जनवरी - मार्च 1995 वर्ष : 27 अंक 1

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

वैमानिक इंजनों में प्रयुक्त इन्टीगरल रोटर

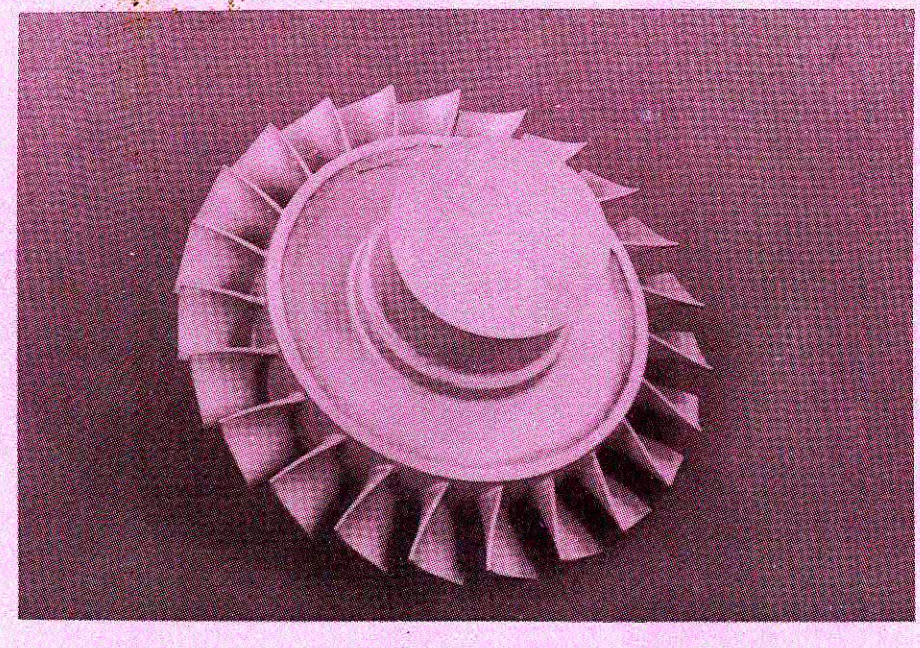

एक स्वदेशी विकास का परिचायक

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार हेतु परिषद नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं " वैज्ञानिक" पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है।

	परिषद सदस्यता (रुपए में)			वैज्ञानिक शुल्क (रुपए में)	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

- "वैज्ञानिक" विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को "वैज्ञानिक" निःशुल्क भेजी जाती है।
- सभी शुल्क हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम से डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्टल आर्डर द्वारा ही भेजें। कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीआर्डर द्वारा शुल्क न भेजें।
- कृपया शुल्क के साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिए गए आवेदन पत्र के प्रारूप के अनुसार भेजें।

" वैज्ञानिक" में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में "वैज्ञानिक" अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सेमी X 21 सेमी है।

विज्ञापन की दरें	: एक प्रति के लिए
अंतिम आवरण	: रु. 2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	: रु 2,000/-
पूरा पृष्ठ	: रु 1,500/-
आधा पृष्ठ	: रु 800/-

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1995

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) निम्नलिखित पते पर भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु 1500/-, द्वितीय रु 1000/-, तृतीय रु 500/-

इसके अतिरक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिन्दी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो विशेष पुरस्कार-प्रत्येक रु 300/- के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 15 दिसम्बर 1995

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होंगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

डॉ. अशोक कुमार सूरी, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, धातुकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, बंबई - 400 085.

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 27 अंक 1

जनवरी - मार्च 1995

व्यवस्थापन मंडल

डॉ. अशोक कुमार सूरी
डॉ. जगदीश चन्द्र मोंगा
श्री घनश्याम दास मित्तल
श्री इंद्र कुमार शर्मा
श्री कुलवंत सिंह

संपादन मंडल

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
श्री हरिओम मित्तल
डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला
डॉ. दुर्गा प्रसाद पांडेय
श्री. रामनाथ जिन्दल

शुल्क

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	25 रु	15 रु
तीन वर्ष	70 रु	40 रु

विदेश में

(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	45 रु	35 रु
तीन वर्ष	125 रु	95 रु

पृष्ठ संख्या

संपादकीय 3

लेख

1. एड्स : कैसे मिलेगा छुटकारा 5
   — विनीता सिंघल

2. "डी. एन. ए. फिंगर-प्रिंटिंग" : एक अनूठा विधि अनुप्रयोग 10
   — कु. अर्चना

3. ईंधन सेल 15
   — डॉ. ए. के. शर्मा एवं प्रो. ए. वी. पत्की

4. सूक्ष्म कणीय इन्वैस्टमैंट कास्टिंग : एक अभिनव धातुकार्मिक तकनीक 24
   — डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा

5. खनिज तेल उत्पादन में सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न संक्षारण की समस्या 30
   — डॉ. अतुल कुमार सामन्त

6. अति चालकता 35
   — श्री श्याम लाल धीमान

7. ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण : प्रदीप्ति द्वारा पदार्थों का विश्लेषण 43
   — डॉ. मदन लाल

8. कार्बोकैटायन : एक अतिसक्रिय ट्रांजिएंट पदार्थों का विश्लेषण 48
   — डॉ. सूर्यदेव मिश्र एवं डॉ. अशोक कुमार बैनर्जी

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा।

कार्यालय

"वैज्ञानिक" हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल काम्प्लैक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
बम्बई - 400 085

"वैज्ञानिक" का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका 'वैज्ञानिक' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर नवीनीकरण करा लें। यदि सम्भव हो तो आजीवन सदस्य बन जाएं।

टिप्पणियां

1. कुमाऊं में परम्परागत वनौषधि उपचार 51
— मोहन चन्द्र कबड़बाल

2. अद्‌भुतगुणों की खान - ब्राह्मी 53
— डॉ. राकेशसिंह सेंगर एवं डॉ. मधु पाण्डेय

बाल विज्ञान

● धूप में फोटोक्रोमी शीशों का रंग बदलना 54
● मृत सागर क्या है ? 54
– डॉ. डी. डी. ओझा

विज्ञान समाचार

● भा. प. अ. केन्द्र से 55
● अन्य समाचार 56

विज्ञान कविताएँ 62

कुछ फूल : कुछ कांटे 63

सदस्यता आवेदन पत्र (प्रारूप)

अध्यक्ष,

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई 400 085.

प्रिय महोदय,

मैं, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद (भापअ केन्द्र, बम्बई) का आजीवन/ साधारण सदस्य बनने का इच्छुक हूं। मेरा निजी विवरण निम्नलिखित है। मैं सदस्यता शुल्क★ साथ भेज रहा हूं। कृपया मुझे परिषद का आजीवन / साधारण सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम	: _____	आयु	: _____
पता-कार्यालय	: _____	पता-निवास	: _____
	_____		_____
व्यवसाय	: _____		: _____
हिन्दी की पात्रता	: _____	प्रवीणता	: _____
(Qualification)	: _____	(Specialisation)	: _____
विशेष रुचि	: _____	हस्ताक्षर	: _____
अन्य विवरण	: _____	दिनांक	: _____

★ शुल्क 'हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद' के नाम डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्टल आर्डर द्वारा ही भेजें।

संपादकीय

उत्पादकता एवं गुणवत्ता पर कार्य संस्कृति का प्रभाव

एक चिंतक एवं विवेकशील व्यक्ति का लक्ष्य जिस प्रकार जीवन में गुणतापूर्ण स्थान प्राप्त करना रहता है ठीक उसी प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में गुणवत्ता स्थापित करना एक सच्चे वैज्ञानिक का परम लक्ष्य होता है। यूं तो वैज्ञानिक शब्द अपने आप में ही परिपूर्ण है फिर भी वर्तमान माहौल में सच्चे या महान विशेषण का प्रयोग असंगत नहीं लगता। परिपूर्णता भी एक सापेक्षिक मन:स्थिति ही है। हर व्यक्ति का इसके लिए अपना अपना मापदण्ड होता है क्योंकि उसकी संतुष्टि का स्तर उसका अपना व्यक्तित्व ही है। यदि हम किसी उत्पाद अथवा प्रौद्योगिकी पर ध्यान दें तो हमें ज्ञात होगा कि उसकी गुणवत्ता या परिपूर्णता का मापदण्ड समय एवं आवश्यकतानुसार बदलता रहा है और यह स्वाभाविक भी है। जैसे-जैसे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास होता गया, उत्पाद एवं प्रौद्योगिकी से अपेक्षाएं भी बदलती गयीं। उदाहरणार्थ एक प्रकाश-संसूचक की सुग्राहकता तथा उसके संसूचन काल को ले लेते हैं। आरम्भ के दिनों में कम सुग्राही तथा अधिक संसूचन काल वाले संसूचकों से वैज्ञानिक संतुष्ट था। परंतु आज की स्थिति में परमाण्विक स्तर पर चल रही परिघटनाओं में पीको (10^{-12}), फेम्टो (10^{-15}), सेकेण्ड की बात होती है। कुछ वोल्ट प्रति वाट की सुग्राहकता के स्थान पर आज कई वोल्ट प्रति माइक्रोवाट अथवा उससे भी कम की विकिरण तीव्रता, वाले संसूचक एक साधारण सी बात बन गयी है। निसंदेह इन मापदण्डों को हासिल करने और उन्हें बनाये रखने के लिए एक विशेष कार्य-संस्कृति की आवश्यकता होती है।

एक स्वस्थ एवं प्रेरणात्मक कार्य संस्कृति (शैली) का विकास चाहे वह अनुसंधान एवं विकास से संबंधित हो या किसी भी संस्थान के लिए उत्पादन से, एक चुनौती पूर्ण कार्य है क्योंकि यह व्यापक तौर पर संस्थान के सभी कर्मचारियों की काम के प्रति सामूहिक योग्यता, विश्वास और दृष्टिकोण को परिलक्षित करता है। एक समुचित माहौल तैयार करना, कर्मचारियों में आवश्यक प्रेरणा जागृत करना, गुणता की महत्ता को समझाना इत्यादि पहलू अहम् महत्व के हैं। यूं तो कार्य संस्कृति को कई चिंतकों / प्रबंधन विशेषज्ञों जैसे वाल्टन, भादुड़ी, किलमैन, सीइन, स्वार्ट्ज एवं डेविस आदि ने अलग-अलग शब्दों में परिभाषित किया है परन्तु सबका सार लगभग एक जैसा ही लगता हैं। इनके अनुसार व्यक्ति विशेष का कार्य के प्रति मूल दृष्टिकोण एवं संस्थान की व्यवस्थापन संबंधित नीतियों के मध्य होने वाली पारस्परिक क्रिया को महत्वपूर्ण बताया गया है। यह एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसका समय के साथ बदलना स्वाभाविक है।

कार्य के प्रति प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक मूल दृष्टिकोण (वर्क-इथोस) होता है जिसे लेकर वह किसी संस्थान में कार्य करने के उद्देश्य से प्रवेश करता है। वैसे तो उसका यही मौलिक गुण उसे समूह में दूसरों से अलग करता है, परंतु संस्थान में प्रवेश के बाद वह वहां प्रचलित माहौल में अन्य लोगों के संपर्क में आकर, उनके साथ काम करने लगता है। इस प्रकार वह उन सबके वर्क-इथोस से काफी प्रभावित होने लगता है। इसके साथ-साथ उस पर संस्थान के व्यवस्थापन एवं संरचनात्मक समूहों की कार्य नीतियों, दृष्टिकोणों का प्रभाव भी स्वाभाविक है। यही सब तो मिलकर वहां की कार्य-पद्धति का स्वरूप बनाते हैं। अत: इसके लिए संस्थान के सभी लोग, कर्मचारी वर्ग से लेकर शीर्षस्थ व्यवस्थापन वर्ग, जिम्मेदार हैं।

एक श्रेष्ठ कार्य संस्कृति ही उच्च गुणवत्ता वाला उत्पाद तथा अधिकाधिक उत्पादकता देने में स मर्थ हो सकती है। आज हमारे देश में आ रही उदारीकरण की नीति के संदर्भ में यही उच्च गुणवत्ता वाला माल ही अंतर्राष्ट्रीय बाजार में चल पाएगा। अत: इस दिशा में प्रयास वांछनीय है। कार्य संस्कृति के विकास हेतु कुछ मुख्य घटक हैं :- शीर्षस्थ प्रबंधन का सही एवं प्रेरणादायक मार्गदर्शन, कर्मचारियों में आपसी विश्वास, स्पष्ट (पारदर्शी) वार्तालाप,

परिवर्तनशीलता, कर्मचारियों में कार्य संतोष, टीम-भावना एवं आपसी सहयोग, संस्थान के प्रति कर्मचारियों में अपनत्व की भावना, कर्मचारियों हेतु सामाजिक गतिविधियों एवं अनौपचारिक सामूहिक वर्गों के लिए प्रोत्साहन, यूनियन-प्रबंधन में सौहार्दपूर्ण संबंध इत्यादि ।

किसी भी संस्थान के लिए आज एक ऐसा वातावरण तैयार करना अत्यावश्यक हो गया है जिससे गुणवत्ता एवं उत्पादकता दोनों में बढ़ोतरी हो पाये । इस हेतु कर्मचारियों में एक जागृति पैदा करना तथा फिर उन्हें इस कार्य के लिए निश्चयी तौर पर तैयार करना अहम प्रश्न हैं । लोगों के प्रयासों तथा दृष्टिकोणों को सकारात्मक रुप में अपनाने से यह कार्य काफी हद तक संभव हो पाता है । सभी कर्मचारियों में आपसी विश्वास पैदा करना एवं उनके कार्य के प्रति पूर्ण आदर करना, उनकी कठिनाइयों को समझना तथा उनके निवारण के लिए प्रयास करना, समाज निर्माण में उनकी भूमिका का अहसास दिलाना इत्यादि कदम कारगर सिद्ध हो सकते हैं । संस्थान के लिए मानव संसाधन एक बहुत बड़ी ताकत होती है । इसको तैयार करने तथा इष्टतम उपयोग, दोनों ही महत्वपूर्ण कार्य हैं । उपयोग के दौरान न केवल उनके हाथों की ताकत को देखा जाय बल्कि उनके मानसिक एवं भावनात्मक पक्षों पर भी विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है ।

यह उल्लेखनीय है कि कई पश्चिमी देशों में अत्यधिक प्रतिस्पर्धी (प्रतियोगी) कार्य संस्कृति को प्रोत्साहित किया जाता हैं । वस्तुत: इससे लोगों में एक दूसरों की कमियों को जानने के प्रति विशेष रुचि बढ़ती है ताकि अपनी योग्यता के साथ-साथ उन कमियों का लाभ उन्हें मिल सके । फलस्वरूप इससे एक संदेहात्मक माहौल तैयार हो जाता है और आपसी विश्वास में कमी आ जाती है जो संस्थान की प्रगति के लिए हानिप्रद सिद्ध होती है । हालांकि आगे बढ़ने की होड़ में कुछ लोगों की जी तोड़ मेहनत से आरम्भ में लाभ तो अवश्य दिखता है परंतु आगे चलकर व्यापक रूप से इसके परिणाम भयंकर सिध्द हो सकते हैं । इसके विपरीत जापान में सांघातिक आपसी फूट को प्रेरित किये बिना एक साथ मिलकर (टीम-भावना से) काम कराने की पद्धति अपना कर गुणवत्ता एवं उत्पादकता, दोनों ही में अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं ।

विभिन्न स्तरों पर समय-समय पर प्रशिक्षण देने का प्रावधान एक अच्छे वातावरण के निर्माण के साथ-साथ लोगों को स्वयं जिम्मेदारी लेने के लिए भी प्रेरक साबित हो सकता है । प्रशिक्षण के दौरान विभिन्न कर्मचारियों को उनके स्तरों के अनुरुप आधुनिकतम जानकारी उनके आत्म विश्वास को जगाती है जिससे वे अपने ज्ञान और अपनी कला को परिमार्जित करके संस्थान को लाभ पहुंचा सकते हैं । आत्मविश्वास बढ़ने से जिम्मेदारी का अहसास और फिर इस भावना से प्रोत्साहित हो उनमें अपने कार्य, कार्यस्थल, उपकरण (मशीन) के प्रति लगाव बढ़ता है । जब सभी लोग स्वेच्छा एवं आत्मनियत्रंण के साथ मन लगाकर अपने-अपने कार्य को करने लगेंगे तो गुणवत्ता एवं उत्पादकता स्वत: ही बढ़ेगी । यह एक सहज बुद्धि की बात है कि जिन सिद्धांतों का पालन उच्च प्रबंधन स्तर पर किया जाता है उनका कार्य स्तर के माहौल पर पूरा प्रभाव पड़ता है । भगवत् गीता के तृतीय अध्याय में भी बताया गया है कि "यद् यद् आचारति श्रेष्ठ: थत् थत् देवेतरो जन:" अर्थात नेता के आचार-व्यवहार को ही जन सामान्य अनुसरित करता है । इसलिए किसी भी संस्थान में सुधारात्मक प्रयासों की शुरुआत उच्च स्तर से ही होनी आवश्यक है ।

❑❑❑

प्रस्तुत अंक वर्ष 1995 का जनवरी-मार्च अंक है । इसमें अखिल भारतीय विज्ञान हिन्दी लेख प्रतियोगिता (1994) में पुरस्कृत लेखों को दिया जा रहा है । स्थानाभाव के कारण कुछ लेख अगले अंक में भी दिये जाएंगे । किन्हीं कारणों से इस वर्ष के अंकों के प्रकाशन में काफी विलम्ब हो रहा है । इसके लिए हमें खेद है । अंकों के बारे में पाठकों की प्रतिक्रिया का अभाव निसंदेह चिंता का विषय है । हिन्दी में विज्ञान साहित्य को प्रभावशील बनाने के लिए पाठकों की सक्रिय भूमिका अपेक्षित है ।

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1994) में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

एड्स : कैसे मिलेगा छुटकारा

विनीता सिंघल
सी 4 जी/103 ए,
जनकपुरी, नई दिल्ली - 110 058

एड्स, एच. आई. वी. नामक वायरस द्वारा उत्पन्न एक ऐसा भयानक रोग है जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को नष्ट कर देता है। और फिर होता है असामान्य जान लेवा रोगों का संक्रमण। एच. आई. वी. की चालों का निश्चय कर पाना कि वे कब और किस तरह जीनों को प्रभावित करेंगे, अत्यन्त कठिन है। आज 12 वर्ष बाद भी इस रोग के निवारण एवं बचाव की स्थिति शोचनीय ही है। सफलता नाम मात्र की है। फिर भी वैज्ञानिक हाथ पर हाथ रखे नहीं बैठे हैं।

योकोहामा, जापान में हाल में ही एड्स सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसके प्रारम्भ होने से पहले विश्व भर को आशा थी कि शायद इस दिशा में हुए नए अनुसंधान इस भयानक रोग से मानव जाति के कल्याण की बात बताएंगे, किन्तु जिस तरह यह सम्मेलन निर्धारित समय से एक दिन पहले ही समाप्त हो गया उससे न केवल लोगों की आशाओं पर पानी फिर गया बल्कि इतने समय से चले आ रहे अनुसंधानों पर एक प्रश्न चिन्ह लग गया। लगभग बारह वर्ष पहले जब यह बीमारी पहली बार सामने आयी थी, तब से लेकर आज तक वैज्ञानिक इस रोग के उपचार और इससे स्थायी बचाव के लिए वैक्सीन की खोज करने में लगे हुए हैं, पर उन्हें अभी तक सफलता बस नाम मात्र को ही मिली है।

अब जबकि एड्स की भयावह चर्चाओं को प्रारंभ हुए एक दशक से अधिक समय बीत चुका है और विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दुनिया भर के 140 लाख वयस्क और 10 लाख बच्चे एड्स के शिकार हो चुके हैं, अत्यधिक स्तब्ध कर देने वाला समाचार यह है कि इस शताब्दी के अंत तक रोगियों की संख्या 1200 लाख तक पहुंच जाने की संभावना है। एड्स के कुछ ही उपचार ढूंढे जा सके हैं जिन में से बहुत से प्रायोगिक अवस्था में ही है। यही हाल वैक्सीन का भी है। अब तक वैक्सीन से बहुत से विषाणुक रोगों जैसे पोलियो, खसरा और चेचक पर काफी हद तक विजय पायी जा चुकी है। एड्स के बारे में भी कुछ ऐसा ही सोचा जा रहा था। किन्तु एड्स अभी तक अविजित है। कई बार ऐसी संभावनाएं प्रकट की गयी हैं कि एड्स-वैक्सीन बस लगभग तैयार ही होने वाली है किन्तु एक दशक बाद भी सब कुछ अभी प्रयोगशालाओं तक ही सीमित है।

वर्ष 1983 में पहली बार वैज्ञानिकों ने बताया कि एड्स का कारण एक विषाणु - ह्यूमन इम्म्यूनोडिफिशियेन्सी वायरस या एच. आई. वी. है जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को प्रभावित करता है। यही प्रतिरक्षा-प्रणाली शरीर को संक्रमणकारी बैक्टीरिया, वायरस आदि का सामना करने में सक्षम बनाती है। सामान्य परिस्थितियों में यह रोगकारक जीवों की पहचान कर, एंटीबॉडी बनाना शुरु कर देती है। ये एंटीबॉडी रोगवाहक पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर देते हैं। एड्स शरीर की उसी क्षमता को नष्ट कर असामान्य जानलेवा संक्रमणों के द्वार खोलता है। क्योंकि शरीर की प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती है। एड्स के कारण होने वाला सबसे सामान्य संक्रमण है न्यूमोनिया। विषाणु का पता चल जाने से लोगों को आशा थी कि जल्दी ही वैज्ञानिक उस प्राणघातक रोग की वैक्सीन भी ढूंढ लेंगे।

वैक्सीकरण सिद्धांत रुप में एक ऐसी सरल प्रक्रिया है जिसमें विषाणु के एक हानिरहित प्रारुप को शरीर में

प्रविष्ट करा दिया जाता है जो शरीर की सुरक्षा प्रणाली को सचेतावस्था में ला देता है और जैसे ही उस विषाणु का वास्तविक स्वरूप शरीर में प्रवेश करने का प्रयास करता है तो यह तेजी से उसे निष्क्रिय कर देता है।

स्थिति आज भी बदली नहीं है। ऐसा नहीं है कि वैज्ञानिक हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। पहले कभी किसी विषाणु के संबंध में इतनी जल्दी उतना कुछ ज्ञात नहीं किया जा सका था। लेकिन जो कुछ मालूम हो सका वह काफी नहीं है. एच. आई. वी की विस्तृत रचना तो पता लग गयी पर यह मालूम नहीं हो सका है कि यह विषाणु शरीर पर किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है, शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित करता है। वैक्सीन बनाने में सबसे बड़ी समस्या यही है। यह विषाणु उन सभी कोशिकाओं पर आक्रमण करता है जो हमें बाहरी संक्रमणों से बचाती हैं। किसी को संक्रमित करने के बाद यह लगातार अपना रूप बदलता रहता है और यही कारण है कि अब तक एच. आई. वी. की आनुवंशिकी का ज्ञान नहीं हो सका है।

हमारे शरीर की सुरक्षा प्रणाली अत्यंत सुदृढ़ है। एंटीबॉडी उस बहुभागीय सुरक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है किन्तु एच.आई.वी. के लिए ये काफी नहीं होती। जब कोई व्यक्ति एच.आई.वी. से प्रभावित होता है तो उसकी प्रतिरक्षा प्रणाली उस विषाणु को नष्ट करने के लिए भी उसी तरह काफी मात्रा में एंटीबॉडी बनाती है जैसी कि वह अन्य किसी विषाणु संक्रमण के समय बनाती है लेकिन ये एंटीबॉडी उस संक्रमण से बचा नहीं पातीं तब प्रश्न उठता है कि एड्स से सुरक्षा पाने के लिए प्रतिरक्षी तंत्र के किस भाग को उत्प्रेरित करना होगा ? केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एड्स अनुसंधान केन्द्र के निदेशक म्यूरेगार्डनर ने यह स्वीकार किया है कि वह अभी तक यह मालूम नहीं कर सके हैं। आज दस वर्षों के बाद भी वे अंधकार में भटक रहे हैं। वर्ष 1984 में वैज्ञानिकों ने बड़े विश्वास से मात्र दो वर्षों में वैक्सीन खोज लेने की बात कही थी लेकिन वह विश्वास आज कहीं दिखायी नहीं देता। आज विषाणु विज्ञानी एच. आई. वी. को सब विषाणुओं से विकट विषाणु मान रहे हैं।

एच.आई.वी. समेत सभी विषाणु प्रकृति में पाए जाने वाले सूक्ष्मतम जीव हैं। प्रोटीन में लिपटे जीन के बंडलों वाले ये जीव किसी परपोषी में प्रवेश किए बिना प्रजनित नहीं हो सकते। एक बार किसी जीव में प्रवेश करने के बाद यह अपने विभिन्न रूप दिखाना शुरु करते हैं। अन्य विषाणु जैसे कि पोलियो और खसरा के विषाणुओं के प्रतिरक्षा तंत्र में पहुंचने की सूचना पूरे तंत्र में फैल जाती है लेकिन एच.आई.वी. उन सबसे बिल्कुल अलग है। यह एक रिट्रोवायरस है। यह शरीर की कोशिकाओं में किसी अपराधी की भांति चुपके से घुस जाता है। वहाँ पहुंचकर कोशिका के डी.एन.ए. में छिप जाता है। शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को उसकी घुसपैठ का जरा भी पता नहीं चलता और यह कोशिका के विभाजन के साथ-साथ चुपचाप बढ़ता चला जाता है। सबसे खतरनाक बात तो यह है कि ये विषाणु संक्रमण से शरीर की रक्षा करने वाली श्वेत रुधिर कणिकाओं, जिन्हें टी-कोशिका कहते हैं, को नष्ट करना शुरु कर देते हैं। प्रभावी प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के लिए ये टी-कोशिकाएं ही उत्तरदायी होती हैं।

यह अभी तक मालूम नहीं हो सका है कि ये अपना काम कब और कैसे आरम्भ करते हैं। 'नेचर' पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार ये वर्षों तक स्वयं को लिम्फ ग्रंथियों में छिपाए रख सकते हैं। फिर अचानक ही रक्त प्रवाह में शामिल होकर टी-कोशिकाओं को नष्ट करना आरंभ कर देते हैं। इनके काम करने का तरीका कोई भी हो लेकिन यह सच है कि रोग की अंतिम अवस्था आने तक ये लगभग सभी टी-कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं।

एच. आई. वी. पर काबू न पा सकने का सबसे बड़ा कारण संभवतः इसका आनुवंशिक रूप से अस्थायी होना है। इसके एक दर्जन से अधिक विभेद ज्ञात हो चुके हैं। एक ही व्यक्ति में कुछ ही वर्षों में ये विषाणु स्वयं

को इतनी तेजी से बल्कि कहना चाहिए कि जादुई ढंग से बदलता है कि प्रतिरक्षा तंत्र के लिए उसकी पहचान करना कठिन हो जाता है ।

अधिकांश अनुसंधानकर्ता अब इस परिणाम पर पंहुचे हैं कि मात्र एक वैक्सीन से इन सभी विभेदों को नष्ट नहीं किया जा सकता । ड्यूक विश्वविद्यालय के विषाणु विज्ञानी दानी बोलोनेसि के अनुसार अगर कोई एक वायरस टी-कोशिकाओं में प्रवेश करता है, विभाजित होता है और संक्रमण फैलाता है तो इसे रोकने के लिए वैक्सीन बनायी जा सकती है लेकिन इस विषाणु के साथ दूसरा ही खतरा होता है । मान लो विषाणु के एक प्रारूप को निष्क्रिय कर बीमारी फैलाने से रोक भी दिया जाए तो रोगी में रहने वाला इसी विषाणु का कोई दूसरा प्रारूप 10-20 वर्षों बाद क्या रूप धारण करेगा कहना कठिन है। एच. आई. वी. की चालों के विषय में कुछ भी निश्चित कर पाना कठिन है कि ये कब, किस प्रकार जीनों को प्रभावित करेगा । ये भी हो सकता है कि ये एड्स के रूप में विकसित न होकर, कैंसर उत्पन्न करने वाली ऑन्कोजीन बनाने लगे ।

एड्स के उपचार की बात हो चाहे वैक्सीन बनाने की, एच.आई.वी. का बहुरूपियापन ही, इसमें सबसे बड़ी बाधा है । इन खतरों को देखते हुए, अधिकांश वैज्ञानिक एक नयी वैक्सीन तकनीक ढूंढने के लिए एकमत हैं । सम्पूर्ण विषाणु पर निर्भर रहने के बजाए उन्होंने अपना सारा ध्यान विषाणु प्रोटीन पर केन्द्रित कर दिया है। आशा है कि एंटीजन नामक ये प्रोटीन, एड्स वैक्सीन बनाने में सहायक सिध्द होंगी। अब रिकम्बिनेन्ट वैक्सीनों पर काम जारी है लेकिन अभी तक एक भी वैक्सीन लंबे समय तक संतोषजनक सुदृढ़ सुरक्षा प्रदान करने में सफल नहीं हो सकी है । यह रिकम्बिनेन्ट अभिगम अपनी उपयोगिता सिध्द कर भी दे, तो भी अभी मार्ग में बहुत सी कठिनाइयां हैं जैसे कौन सा विषाणु प्रोटीन सबसे प्रभावी वैक्सीन सिध्द होगा ? विषाणु के किस विभेद से वह प्रोटीन मिल सकती है ? विकल्प तो बहुत से हैं लेकिन उनमें से सही

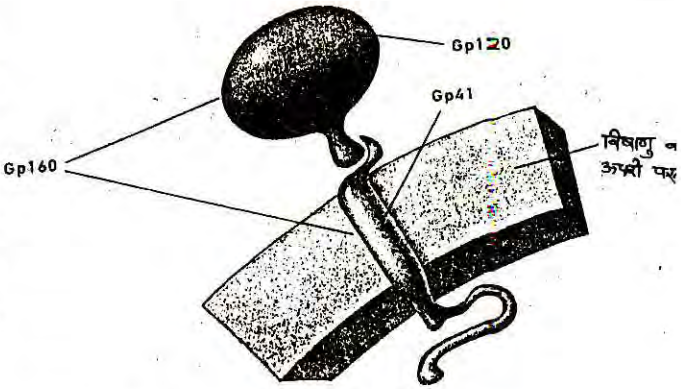

चित्र- 1 : विनाशकारी प्रोटीन की संरचना

विकल्प कौन सा है और कैसे मिलेगा, कहा नहीं जा सकता। एक सफल वैक्सीन के लिए आवश्यक है कि वह प्रतिरक्षा तंत्र के सभी भागों को उद्दीपित करे क्योंकि तभी उस रोग से पूर्ण सुरक्षा संभव होगी ।

इस समय विभिन्न बायोटेक कम्पनियां विभिन्न रिकम्बिनेट वैक्सीनों के मानवीय परीक्षण करने में व्यस्त हैं । उनमें से अधिकांश में विषाणु की बाहरी सतह पर पायी जाने वाली ग्लाइकोप्रोटीन Gp160 का प्रयोग किया गया है । बिना उस प्रोटीन के एच. आई. वी. टी-कोशिकाओं से जुड़ नहीं सकता अर्थात् उन्हें संक्रमित नहीं कर सकता । Gp160 के दो मुख्य भाग होते हैं । एक है बाहर की उभरी हुई घुंडी जैसी रचना Gp120 (यही भाग है जिसके द्वारा विषाणु परपोषी कोशिकाओं से जुड़ता है) और दूसरा भाग है एक छोटी रचना Gp41 जिसके द्वारा घुंडी जैसी रचना विषाणु की बाहरी भित्ति से जुड़ी रहती है (चित्र -1) । यह प्रोटीन रिकम्बिनेन्ट वैक्सीन का प्रमुख स्रोत हो सकती है क्योंकि ये प्रतिरक्षा तंत्र के लिए एक जबरदस्त उद्दीपक का काम करती है ।

सच तो यह है कि अभी तक कोई भी पूरी तरह यह नहीं जान सका है कि घुसपैठ कर रहे रिट्रोवायरस और परपोषी के प्रतिरक्षा तंत्र के बीच वास्तव में क्या होता है? यह प्रोटीन कहां से आती है ? विषाणु से या प्रभावित व्यक्ति की कोशिकाओं से ? बीमारी की रोकथाम के विरुद्ध किस प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को निर्देशित करना

क्या होता है एड्स ?

एड्स - एक्वायर्ड इम्म्यून डिफ़िशियेंसी सिन्ड्रोम एक ऐसा रोग है इसमें शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता कम होती जाती है। शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र, सामान्य परिस्थितियों में रोग वाहक जीवों की पहचान कर, एंटीबॉडी नामक पदार्थ की उत्पत्ति को प्रेरित करता है जो अनचाहे तत्वों को नष्ट करती है।

एड्स, शरीर की जीवाणु और विषाणु आदि जीवों को नष्ट करने की क्षमता को प्रभावित करता है जिसका परिणाम होता है कई प्रकार के संक्रमण। उन संक्रमणों को अवसरवादी भी कहा जा सकता है जो शरीर के अक्षम होने का लाभ उठा विकसित हो जाते हैं। ऐसा ही एक संक्रमण है न्यूमोनिया। *न्यूमोसिस्टिस केरीनी* के कारण होने वाला यह न्यूमोनिया पहले यदा कदा ही देखने में आता था।

एड्स के परिणाम स्वरूप कैपॉसी सारकोमा नामक दुर्लभ ट्यूमर भी हो सकता है। आम तौर पर यह केवल त्वचा को प्रभावित करता है किन्तु एड्स के रोगी में यह पूरे शरीर में फैल जाता है। हालांकि एड्स में कैपॉसी सारकोमा हाने का कारण ज्ञात नहीं है किन्तु वैज्ञानिकों के अनुसार संभवत: प्रतिरक्षा तंत्र के कमजोर हो जाने के कारण ही ऐसा होता है। कैपॉसी सारकोमा और न्यूमोनिया, एड्स के दो प्रमुख लक्षण हैं।

चाहिए ? एड्स विषाणु के विरुद्ध वैज्ञानिकों ने जो भी सुरक्षात्मक उपाय ढूंढ़ा है वह अभी तक पूरी तरह कारगर सिद्ध नहीं है सका है। सच कहा जाए तो अभी तक यही सुनिश्चित नहीं हो सका है कि ये विषाणु किस प्रकार अपना जाल फैलाते हैं।

हमारे शरीर में मुख्य रूप से दो प्रकार के प्रतिरक्षा तंत्र होते हैं और दोनों में बहुत अंतर होता है। एक तंत्र रक्त में प्रवाहित हो रहे संक्रमणकारी को नष्ट करने के लिए, उसकी पहचान कराने के लिए तेजी से एंटीबॉडी बनाने लगता है और दूसरा तंत्र मारक कोशिकाओं को, संक्रमित कोशिकाओं में छिपे विषाणु को ढूंढ़ने का निर्देश देता है। जब तक अनुसंधानकर्ताओं के सम्मुख यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि एच. आई. वी. संक्रमण को खत्म करने के लिए कौन सा तंत्र अधिक महत्वपूर्ण है, तब तक वैक्सीन बनाने के लिए चल रहा संघर्ष केवल परीक्षणों तक ही सीमित रहेगा।

एड्स के अनसुलझे रहस्यों में से एक रहस्य यह भी है कि एच. आई. वी. उतनी सारी टी-कोशिकाओं को कैसे नष्ट कर देता है जबकि स्वयं बीमारी की अंतिम अवस्था में ही रक्त में प्रकट होता है। उसका एक जवाब यह हो सकता है कि एच. आई. वी. लिम्फ ग्रंथियों में छिपा रहता है और वहीं बहुगुणित होता रहता है। लेकिन टी-कोशिकाओं तथा अन्य कोशिकाओं की उतनी बड़ी क्षति को देखते हुए यह बहुत सही नहीं लगता। कुछ वैज्ञानिकों को संदेह है कि यह प्रतिरक्षा तंत्र को सीधे-सीधे नुकसान नहीं पहुंचाता बल्कि कुछ दूसरे तरीके अपनाता है। जिनके परिणाम स्वरूप प्रतिरक्षा तंत्र की सुरक्षा व्यवस्था लड़खड़ा जाती है और टी-कोशिकाएं स्वयं ही नष्ट होने लगती हैं।

रिकम्बिनेट वैक्सीन की उपयुक्तता के संबंध में अनेक संदेह व्यक्त किए जा रहे हैं जिनमें से एक यह है कि कहीं यह रिकम्बिनेन्ट वैक्सीन उल्टा असर तो नहीं दिखाएगी अर्थात् जहां एक ओर यह Gp120 के विरुद्ध जबरदस्त प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया दिखाएगी, तो दूसरी ओर कहीं यह प्रतिरक्षा तंत्र को स्वयं पर आक्रमण करने के लिए भी तो उत्प्रेरित नहीं कर देंगी। वेन्कुवर, ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय (कनाडा) के प्रतिरक्षा विज्ञानी जॉफ्रे हॉफमैन का कहना है कि ऐसा भी हो सकता है। इस संभावना से पूरी तरह इंकार नहीं किया जा सकता।

तो क्या एड्स से छुटकारा पाने की संभावना संदेहों और जटिलताओं के बीच घिर कर रह जाएगी? एड्स से छुटकारे का एकमात्र उपाय है एड्स वैक्सीन; जिसकी जरूरत पहले की अपेक्षा आज कहीं ज्यादा है। चूंकि अगर एक बार विषाणु शरीर में प्रवेश कर जाए तो उसे बढ़ने से रोकना कठिन है। यही कारण है कि एड्स वैक्सीन की जरूरत और भी बढ़ जाती है जिससे इस धूर्त विषाणु के शरीर में प्रवेश को ही रोका जा सके। एक अनुसंधानकर्ता के अनुसार वैज्ञानिक सदैव आशावादी होते हैं इसलिए अनुसंधान तो चलता रहेगा और एक दिन अवश्य इस त्रासदी से छुटकारा मिलेगा।

एस्प्रिन से होगा एड्स का इलाज

अचानक ही एस्प्रिन को इस युग की चमत्कारी औषधि कहा जा रहा है। आशा है कि मामूली दर्द और बुखार की यह औषधि अब एड्स उत्पन्न करने वाले विषाणु एच. आई. वी. की बढ़त रोकने में भी सहायक हो सकती है। इस संबंध में पहली रिपोर्ट, नीदरलैंड में दो वर्ष पूर्व हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत की गयी थी। इस रिपोर्ट के अनुसार एस्प्रिन तथा कुछ अन्य इन्डोमेथासिन आदि नॉन-स्टीरॉयडल एंटीइन्फलामेट्री औषधियां साइक्लोऑक्सीजिनेस नामक हार्मोन पर रोक लगा कर एच. आई. वी. की वृद्धि को रोक सकती है। यही हार्मोन ट्यूमर नेक्रॉसिस कारक एल्फा (TNF-a) की सक्रियता और उत्पादन को प्रभावित करता है और यह कारक एच. आई. वी. के बहुगुणित होने को उत्प्रेरित करता है।

इसी प्रकार ये दवाइयां प्रोस्टाग्लैंडीन की मात्रा को कम करके भी एच. आई. वी. की वृद्धि और प्रतिरक्षा तंत्र की विषाणु के प्रति प्रतिक्रिया को प्रभावित करती हैं। विभिन्न परीक्षणों में देखा गया है कि प्रोस्टाग्लैंडीन ई 2 एच. आई. वी. विषाणु की वृद्धि को 250 प्रतिशत बढ़ा देता है। प्रतिदिन 1000 मिग्रा. एस्प्रिन या 100 मिग्रा. इन्डोमेथासिन (TNF-a) की मात्रा को 80-90 प्रतिशत तक कम कर देती है। अभी तक हुए परीक्षणों में देखा गया है कि एस्प्रिन अस्थायी रूप से एड्स विषाणु की बढ़त को रोक सकने में सक्षम है। हालांकि यह उतना सरल नहीं है जितना कि लगता है। लेकिन अगर वास्तव में यह सही सिद्ध हुआ तो एड्स जैसे भयानक रोग से छुटकारा पाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा।

आशा की कुछ और किरणें

अब तक एड्स के उपचार के लिए AZT एकमात्र औषधि थी किन्तु अब कुछ और नवीन संभावनाएं सामने आयी हैं जैसे कि यदि उसे डाइडानोसिन (ddI) या डाइडीऑक्सीसाइटाडीन (ddc) आदि के साथ दिया जाए तो एच. आई. वी. के विकास की गति धीमी हो जाती है। अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार संक्रमण की आरंभिक अवस्था में इससे पहले कि प्रतिरक्षा तंत्र पूर्ण रूप से निष्क्रिय हो जाए, AZT के साथ ddI और ddC लेना लाभदायक हो सकता है। यदि एड्स संक्रमित महिला को गर्भावस्था के दौरान, AZT दिया जाए तो संतान के स्वस्थ एवं संक्रमण से मुक्त होने की आशा की जा सकती है इसे एड्स अनुसंधान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है। केलिफोर्निया के एक वैज्ञानिक ने एक विषाणुरोधी जीन उत्पन्न की है। यदि इस जीन को एच. आई. वी. संक्रमित रोगी में लगा दिया जाए तो यह एच. आई. वी. की बढ़त को रोक सकती है। यद्यपि इसका सत्यापन अभी शेष है। d4T और 3TC जैसी कुछ अन्य औषधियां भी हैं जो AZT की तरह काम करती हैं किन्तु इनमें से किसी ने भी बहुत संतोषजनक परिणाम प्रदर्शित नहीं किए हैं।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1994) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

"डी.एन.ए. फिंगर-प्रिंटिंग" : एक अनूठा विधि अनुप्रयोग

कु. अर्चना
वैज्ञानिक, आनुवंशिकी विभाग,
राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, 132 001 (हरियाणा)

अपराध-अन्वेषण का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक होता है, प्राप्त सबूतों का व्यक्ति विशेष के साथ स्पष्ट संबंध स्थापित करना। डी.एन.ए. अनुक्रम से किसी व्यक्ति की पहचान को अनूठी विशिष्टता मिली हुई है। इसी अनुक्रम का आकलन 'डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग' कहलाता है। आण्विक स्तर पर प्राप्त इस विशेष आधुनिक तकनीक का प्रयोग अपराध-अन्वेषण में विशेष उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इसी तकनीक का विश्लेषण प्रस्तुत है इस लेख में।

मानव में अपराधवृति उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव युग एवं सभ्यता की उत्पत्ति। इसी के साथ ही साथ शुरू हुई अपराध अन्वेषण की जिज्ञासा। समय-समय पर नूतन ज्ञान व आवश्यकता के आधार पर विकसित परीक्षणों के प्रयोग एवं अनुप्रयोग एक सीमा तक ही सही अपराधी को पकड़ने में लम्बे काल तक सहायक सिद्ध होते रहे हैं। सन् 1860 में हाथों के अंगुलि चिन्ह किसी व्यक्ति विशेष की पहचान का माध्यम थे, परन्तु धीरे-धीरे इनको अपराध अन्वेषण के लिए प्रयोग में लाया जाने लगा। चूंकि इन अंगुलि चिन्हों की विशेषता केवल लक्षणरूपी (फिनोटिपिक) स्तर पर ही आँकी जा सकती है, अतः आण्विक (मॉलिक्यूलर) स्तर पर इसी प्रकार के निश्चित परिमाप का अभाव खटकने लगा। शनैः शनैः डी.एन.ए. (डी-ऑक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल) फिंगर प्रिंटिंग तकनीक के आगमन ने यह कमी पूरी कर ही दी।

डी.एन.ए. अनुक्रम (सिक्वेन्स) में अतीव उच्चस्तर की बहुरूपता के आधार पर ही किसी व्यक्ति विशेष की पहचान को एक अनूठी विशेषता प्रदत्त है। विश्व भर में किन्हीं भी दो व्यक्तियों के डी.एन.ए. फिंगर-प्रिंट (अपवाद- केवल समरूप जुड़वा भाई या बहनें) एक समान होने की संभावना 94 अरबों में से एक है, जो कि विश्व की वर्तमान जनसंख्या का लगभग दो गुना है। अतः डी.एन.ए. फिंगर-प्रिंटिंग (डी. एफ. पी.) एक सही, विश्वसनीय एवं अप्रश्नीय रूप में समरूपता स्थापित करने में सक्षम है।

डी. एन. ए. क्या है ?

जैसा कि विदित है, डी.एन.ए. हर व्यक्ति की स्वयं में ही एक विशिष्टता है, जो कि एक व्यक्ति विशेष के शरीर के हर अंग, हर अवयव एवं हर कोशिका में समरूप, समसंरचना में विद्यमान होता है। इसी कारण इसे शरीर का 'ब्लूप्रिंट' कहा जाता है।

आधारिक संरचना

कोई भी डी.एन.ए. चार नाइट्रोजनी क्षारों (बेस) से बना होता है; ए (A) : एडीनीन, टी (T) : थायमीन, जी (G) : ग्वानीन एवं सी (C) : साइटोसीन.

हरेक क्षार एक फॉस्फोरिक अम्ल एवं एक शर्करा अणु (डीऑक्सीराइबोज) से जुड़ा होता है, जिसे 'न्यूक्लियोटाइड' का नाम दिया गया है। एडीनीन सदैव थाइमीन के साथ एवं ग्वानीन साइटोसीन के साथ युगल बनाता है, जो क्रमशः दो एवं तीन हाइड्रोजन बंधों से जुड़े होते हैं।

A = T (हाइड्रोजन बंध) एवं G ≡ C (हाइड्रोजन बंध)

डी.एन.ए. का अणु एक लम्बे धागे के समान होता है, जिसका नाइट्रोजनी क्षार अनुक्रम (सिक्वेन्स) प्रत्येक जीव में भिन्न होता है। यह आण्विक स्तर की भिन्नता ही आनुवंशी पहचान स्थापित करने में सक्षम है। इसी को 'बहुरूपता' अर्थात 'कई रूपों में पाया जाने' का नाम दिया गया है।

पुनः-संयोगित डी.एन.ए. तकनीक द्वारा निर्मित संकर डी.एन.ए. को तीव्रगति से विभाजीय जीवाणु (उदाहरणतया इश्चेरिशिया कोलाई) में जोड़कर अल्पकाल में ही वांछित डी.एन.ए. की असंख्य प्रतियाँ एकपुंजित (क्लोन) की जा सकती हैं। इस प्रकार आवश्यकता के आधार पर डी.एन.ए. को संश्लेषित कर क्लोन प्राप्त किया जा सकता है। इसके प्रयोग द्वारा आयुर्विज्ञान में विभिन्न परजैविक, जीवाणुज एवं विषाणुज रोगों का निदान किंचित संभव हुआ है। कुछ आनुवंशी संचरित विकारों जैसे, हन्टिंगटन कोरिया, डुशने मस्कुलर डिस्ट्रोफी, सिस्टिक फाइब्रोसीस, रक्त कोशिका विकारों आदि का जन्मपूर्व जान पाना भी इसी तरह के प्रयोगों की उपलब्धि रही है।

डी.एन.ए. फिंगर-प्रिंटिंग में प्रयुक्त जीन-एषणी (जीन प्रोब), आनुवंशी पदार्थ के ही खंड हैं. डॉ. लालजी सिंह (कोशिकीय एवं अणुजैविकी केन्द्र, हैदराबाद) द्वारा बनाये गये बी. के. एम. [एक प्रकार के भारतीय सर्प के डी. एन. ए. से बनाया गया उप एकपुंज 2(8)] केवल भारत में ही नहीं वरन् विश्व भर में जीन एषणी के रूप में सर्वप्रचलित है।

आखिर डी. एन. ए. फिंगर-प्रिंटिंग है क्या ?

वास्तव में डी. एफ. पी. की स्थापना 1985 में जैफ़रीज एवं उनके साथियों द्वारा विकसित एक तकनीक से हुई। परन्तु इस तकनीक को भारत में लाने व विकसित-प्रचलित करने का श्रेय डॉ. लालजी सिंह को जाता है।

जैसा कि सर्वविदित है, उच्च श्रेणी के प्राणियों (यूकेरियोट्स) का संजीन पुनरावृतीय (रिपिटेटिव) डी. एन. ए. से भरा होता है। ये अनुबद्ध परावर्तन (टेन्डम रिपीट) सारे संजीन (जीनोम) पर लगभग समांग व्यूह बनाते हैं, जिसे अनुषंगी (मिनीसेटेलाइट) डी. एन. ए. का नाम दिया गया है। ये अनुक्रम उच्च स्तरीय युग्मविकल्पी (एलिलिक) विभिन्नता दर्शाते हैं, इसी कारण इन्हें 'अनुबद्ध पुनरावर्तन चर संख्या' (वेरिएबल नम्बर ऑफ टेन्डम रिपीट्स) एवं अतिभिन्न क्षेत्र (हाइपरवेरिएबल रीजन्स) कहा जाता है। ये अनुक्रम लगभग 10^{-14} क्षार युगल एवं जी.सी. क्षार से फले होते हैं. जब संजीनी डी. एन. ए. को सीमित-क्रिया प्रकिण्व (रिस्ट्रिक्शन एन्ज़ाइम) द्वारा चयापचित करवा कर इस तरह के अनुषंगी डी. एन. ए. के आन्तरिक अनुक्रम के साथ संकरित किया जाता है तो स्वविकिरण-चित्र (ऑटोरेडियोग्राफ) पर विभिन्न आकारों की पट्टियों के आधार पर एक व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति से भिन्न प्रमाणित किया जा सकता है।

तकनीकी दृष्टिकोण

डी. एन. ए. प्रिन्ट्स प्राप्ति के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया करनी पड़ती है :

(अ) डी. एन. ए. का ऊतक से विलगन एवं प्रकिण्व द्वारा अवयवों की प्राप्ति :

चूंकि डी. एन. ए. हर केन्द्रिक कोशिका में विद्यमान होता है, अतः अन्यान्य रासायनिक अभिक्रियाओं के आधार पर क्रोमेटिन (रज्या) पदार्थ लेने के पश्चात प्रकिण्व क्रिया की जाती है, एक विशेष एन्ज़ाइम 'प्रोटीनेज' के सभी प्रोटीन संदूषण की संभावना को कम करता है। तत्पश्चात फिनोल-क्लोरोफार्म से बाकी प्रोटीन हटाई जाती है और डी. एन. ए. का शुद्धिकरण भी इसी प्रक्रिया द्वारा होता है। डी. एन. ए. की मात्रा एवं गुणवत्ता की जांच के बाद रिस्ट्रिक्शन एन्ज़ाइम द्वारा इन्हें काट कर छोटे-छोटे अवयव प्राप्त किये जाते हैं। अवयवों का आकार व संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि उस विशेष एन्डोन्यूक्लिएज का क्षार अनुक्रम उस डी. एन. ए. में कहां और कितनी बार उपस्थित है। विभिन्न व्यक्तियों के डी. एन. ए. में अतिभिन्न क्षेत्र एक समान होने की संभावना नगण्य है, यही कारण है कि एक व्यक्ति के डी. एन. ए. के अवयव किसी भी अन्य व्यक्ति से भिन्न ही होंगे।

डी. एन. ए. के अवयवों का प्रभाजन :

भिन्न भिन्न आकार के डी. एन. ए. अवयवों को प्रभाजित करने के लिए वैद्युतकण संचलन (इलेक्ट्रो-फोरेसिस) पद्धति प्रयुक्त की जाती है। इस विधि द्वारा किसी संरन्ध्र आधार (अगैरोज जैल) में से डी. एन. ए. अवयवों को विद्युत क्षेत्र के अन्तर्गत चलायमान बनाया जाता है। डी. एन. ए. पर ऋणात्मक आवेश होता है, अतः यह धनात्मक ध्रुव की तरफ आकर्षित होता है। रंध्रों में से छोटे अवयव सुगमता से निकल सकते हैं, इसलिए आगे बढ़ जाते हैं एवं बड़े अवयव पिछड़ जाते हैं। जैल को 'इथिडियम ब्रोमाइड' नामक रंजक के घोल में अभिरंजित करके पराबैंगनी प्रकाश में आँका जा सकता है।

नाइलोन झिल्ली पर डी. एन. ए. का अन्तरण :

चूंकि जैल की सतह डाँवाडोल सी होती है, अतः प्रभाजित डी. एन. ए. प्रतिमान का निश्चित आधात्री पर अन्तरण आवश्यक हो जाता है। इसके लिए धनात्मक आवेश वाली नाइलोन झिल्ली (हाइबॉन्ड एन$^+$) सर्वउपयुक्त पायी गयी है। यह प्रक्रिया, जो कि चूषण (ब्लॉटिंग) कहलाती है, तीन विभिन्न विधियों से की जा सकती है:-

1) केशिका क्रिया (कैपिलरी)
2) निर्वात क्रिया (वैक्यूम)
3) वैद्युत क्रिया (इलेक्ट्रो)

रासायनिक घोलों के माध्यम से अन्तरण निम्नलिखित क्रम में किया जाता है :

विप्यूरीकरण : प्यूरीन व पिरिमिडिन (क्षारों) को विकुण्डलित करने के लिए,

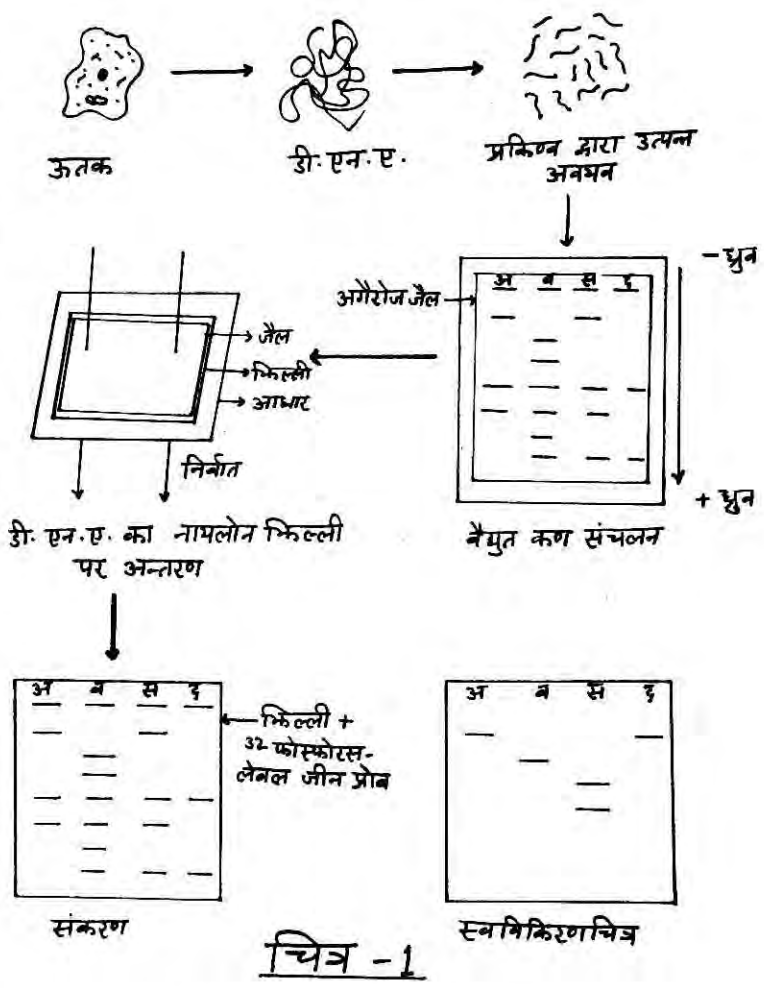

चित्र - 1

विगुणकर्मण : द्विगुणित डी. एन. ए. एकलगुणित करने हेतु,

निष्प्रभावीकरण : एकलगुणित डी. एन. ए. को जैल से झिल्ली पर अन्तरण एवं डी. एन. ए. की संरचना को इसी रूप में रखने हेतु।

इन सब प्रक्रियाओं के बाद झिल्ली को निकाल कर, सुखा कर निर्वात भट्टी में सेंका जाता है या पराबैंगनी तिर्यकबंधन करके (क्रॉसलिंकिंग) संकरण के लिए रखा जाता है।

संकरण :

डी. एन. ए. प्रतिमानों की पहचान के लिए प्रयुक्त जीन-एषणी को रेडियोधर्मी (^{32}P) से लेबल किया जाता है। इसी एषणी को विभिन्न क्रियाओं द्वारा झिल्ली पर डी.एन.ए. से संकरण के लिए रखा जाता है। अपने पूरक अनुक्रम के साथ संकरित हो कर, रेडियो धर्मिता की वजह से एषणी से जुड़े अवयव प्रकाशसंवेदी एक्स-किरण फिल्म पर छोटी-छोटी पट्टियों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इसी से एषणी के संकेत की उग्रता को जांचा जा सकता है (चित्र-1)।

परिणामों की जांच :

किन्हीं दो व्यक्तियों का डी. एन. ए. अनुक्रम सीमित प्रकिण्व द्वारा एक समान अवयव प्रदान नहीं कर सकता अतः संकरण द्वारा प्राप्त पट्टियों की उग्रता भी भिन्न-भिन्न ही होगी। परन्तु, यदि डी. एन. ए. एक ही व्यक्ति से है (चाहे स्रोत अलग-अलग ऊतक जैसे खून, वीर्य, थूक आदि हो) तब डी. एन. ए. प्रतिमान समान ही होंगे।

इसी गूढ़ता को ध्यान में रखते हुए किसी भी अपराध स्थल पर पाये गये नमूने का डी. एन. ए. विश्लेषण अभियुक्त के डी. एन. ए. से तुलनात्मक दृष्टि से आंका जा सकता है। दोनों ही प्रतिमान एक समान पाये जाने की दशा में निश्चित ही अभियुक्त के अपराधी होने की पुष्टि की जा सकती है।

डी. एन. ए. फिंगर-प्रिंटिंग की पूर्व-प्रचलित अन्य जैविकी परीक्षणों पर विजय :

निम्नलिखित कारणों से डी. एफ. पी. को पूर्व-प्रचलित परीक्षणों की अपेक्षा ज्यादा मान्यता प्राप्त हो रही है :

सही आंकलन :

इस विधि द्वारा परीक्षण की मौलिकता एवं यथार्थता बनी रहती है। अन्य परीक्षणों, जैसे रक्त समूह एवं प्रोटीन विश्लेषण, की भांति मिथ्या परिणामों की संभावना भी इसमें नहीं है। उदाहरणतः सभी प्राणी केवल 4 रक्त समूहों में विभाजित हैं अतः विशेष पहचान संभव नहीं है।

विशिष्टता :

डी. एन. ए. प्रिन्ट स्वयं में ही एक विशिष्ट परीक्षण है। इस एक विधि की यथार्थता अन्य सभी जैविकी परीक्षणों से सर्वोपरि है। यह हर जीव व प्राणी के लिए विशेष हैं, जबकि अन्य परीक्षणों के आधार पर केवल बाहरी लक्षणों की ही पहचान हो पाती है।

कोई भी नमूना मान्य :

इस परीक्षण द्वारा शरीर के किसी भी ऊतक का नमूना एक समान ही परिणाम देगा। अन्य परीक्षणों की तरह यह आवश्यक नहीं कि विशेष नमूना होने पर ही परीक्षण किया जा सकता है। सभी प्रकार की कोशिकाओं से प्राप्त डी. एन. ए. एक जैसा ही होगा चाहे वह रक्त से हो, वीर्य से हो या फिर बाल की जड़ से।

पॉलीमिरेज श्रृंखला अभिक्रिया के विकास के साथ ही साथ नमूने की ज्यादा मात्रा का होना भी आवश्यक नहीं रहा। कम से कम मात्रा से भी डी. एफ. पी. किया जाना संभव हो गया है।

डी. एन. ए. की स्थिरता :

सैकड़ों वर्ष पुराने नमूनों में से भी बिना संरचना के परिवर्तित हुए डी. एन. ए. प्राप्त किया जा सकता है, जबकि अन्य जैविकी परीक्षणों के लिए ये नमूने व्यर्थ सिद्ध होते हैं। डी. एन. ए. को लम्बे अन्तराल तक भी सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जा सकता है।

उपलब्धि में सुगमता :

किसी भी नमूने से, जो कि अपराध-स्थल पर आसानी से प्राप्त हो जाये, डी. एन. ए. प्रिन्ट बनाये जा सकते हैं। परन्तु यह सुगमता अन्य जैविकी परीक्षणों के लिए प्राप्य नहीं है, विशेष रूप से साधारण अंगुलि चिन्ह। अधिकतर अपराधी इस विषय में सजग भी रहते हैं कि उनके अंगुलि चिन्ह अन्वेषण के लिए उपलब्ध ही न हो पायें लेकिन डी. एन. ए. प्रिन्ट से बच पाना किंचित असंभव है। उदाहरणतः बलात्कार के अपराधों में। चूंकि वीर्य से भी डी. एन. ए. प्राप्त हो सकता है, अतः संदेहात्मक व्यक्ति(यों) के खून से प्राप्त डी. एन. ए. की तुलना के आधार पर अपराधी को शत प्रतिशत विश्वसनीय रूप में पकड़ा जा सकता है।

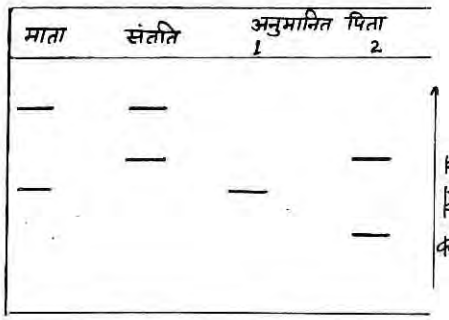

पैतृकता जांच : अनुमानित पिता 2 ही बच्चे का वास्तविक पिता है।

चित्र - 2

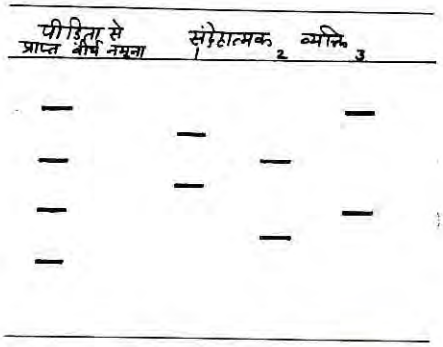

बलात्कार में अपराधी की जांच : व्यक्ति संख्या 3 वास्तविक अपराधी है।

चित्र - 3

मूल्यावलोकन :

चाहे आर्थिक दृष्टि से डी. एन. ए. प्रिंट परीक्षण अन्य जैविकी परीक्षणों की तुलना में महंगा अवश्य है, परन्तु यथार्थ के धरातल पर यही सर्वश्रेष्ठ मान्य है। किसी भी निर्दोष को दण्ड का भागी बनने से बचाने के संदर्भ में देखा जाये तो उसके जीवन एवं जीवन मूल्यों को विचारते हुए, निस्संदेह यह परीक्षण हर रूप में सस्ता ही प्रमाणित होगा।

डी. एफ. पी. के अनुप्रयोग :

इस अनूठी तकनीक के बहुआयामी प्रयोग व उपयोग निम्नलिखित हैं :

विधि सम्बन्धी :

- ❑ पैतृकता जांच व विश्लेषण - लगभग आधे डी. एन. ए. प्रतिमान माता की ओर से और इतने ही पिता की ओर से बच्चे में संचरित होते हैं। इसी के आधार पर सही पैतृकता की जांच की जा सकती है (चित्र-2)।
- ❑ अपराधिक मामलों में – (उदाहरणतः बलात्कार, हत्या आदि) डी. एन. ए. प्रतिमान ही इस प्रकार की जांच का सक्षम आधार है (चित्र - 3)।
- ❑ मृत शरीरों के क्षत-विक्षत अवशेषों की पहचान में।
- ❑ प्रवास के लिए पारिवारिक सम्बन्धों की जांच में।

आयुर्विज्ञान एवं कृषि सम्बन्धी अध्ययन :

- ● सहवर्तिता (लिंकेज) माप में।
- ● जीनिक समता जांच में।
- ● किसी दुष्कर रोग की जांच व निदान में।
- ● पशु एवं पादप अभिजनन कार्यक्रमों में।
- ● पुनर्पादित कोशिकीय संख्या की पहचान में।
- ● वाई गुणसूत्र विशिष्ट जीन एषणी द्वारा जैविकी नमूनों में लिंग निर्धारण हेतु, इत्यादि . . . इत्यादि।

डी. एन. ए. फिंगर-प्रिंटिंग एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तकनीक है। आवश्यकता है तो इसे सही रूप में समझने, प्रयोग में लाने एवं (व्याख्या) करने की। निस्संदेह, डी. एन. ए. टाइपिंग किसी अभियुक्त को सही अर्थों में शंकामुक्त करवाने या दण्ड का भागी बनाने के लिए एक सशक्त माध्यम है। हर निर्णय में दूध का दूध एवं पानी का पानी करके अभियुक्त को गलत दण्ड मिलने कि क्रूरता को जड़-मूल से उखाड़ फेंक कर, न्याय को वास्तविक अर्थों में पूजनीय बनाने का कार्य केवल डी. एन. ए. फिंगर प्रिंटिंग के ही वश की बात है। भविष्य में, इसके प्रयोग से वह दिन दूर नहीं प्रतीत होता, जब हर निर्णय निष्पक्ष होगा एवं किसी भी निर्दोष को अन्य परीक्षणों के मिथ्या परिणामों के कारण कष्ट भोगना नहीं पड़ेगा।

❑❑❑

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1994) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

ईंधन सेल

डॉ. ए. के. शर्मा
प्रधान, ऊष्मीय प्रक्रम अनुभाग,
प्रो. ए. वी. पत्की
उपनिदेशक, यांत्रिक क्षेत्र,
इसरो उपग्रह केंद्र, बैंगलौर - 560 017

ऊर्जा की बढ़ती ख़पत तथा पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के निरन्तर क्षय के कारण वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का विकास आवश्यक हो गया है। वैज्ञानिक नित ऐसे अपरम्परागत ऊर्जा स्रोतों की खोज में लगे हैं जो लागत-संगत तथा पर्यावरण हितकारी हों। विद्युत ऊर्जा उपयोग और पर्यावरण की सुरक्षा की दृष्टि से उपभोक्ता के लिए एक सरल एवं व्यवहारिक ऊर्जा स्रोत हैं ईंधन सेल। ये रासायनिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित करते हैं और अपनी अनेक उत्कृष्ट विशिष्टताओं के कारण, स्थलीय तथा अंतरिक्षीय, उपयोगों के लिए उपयुक्त ऊर्जा स्रोत हैं। इस लेख में ईंधन सेलों की कार्य प्रणाली, सिद्धान्त, सामान्य निष्पादन अभिलक्षण, वर्गीकरण तथा उपयोगों पर प्रकाश डाला गया है।

ईंधन सेल एक ऐसी विद्युत रासायनिक युक्ति है जिसमें ईंधन की रासायनिक ऊर्जा को, दहन के मध्यावर्ती चरण के बिना, सीधे ही विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित कर लिया जाता है। ईंधन सेलों तथा पारम्परिक बैटरियों में मूलभूत भिन्नता उनके द्वारा ऊर्जा की निरन्तर आपूर्ति से सम्बन्धित है। बैटरियों के विपरीत ईंधन सेलों में अभिकारक (ईंधन तथा आक्सीकारक) सेल के बाहर भंडार टंकियों में संचयित रहते हैं तथा आवश्यकता के अनुसार उन्हें रिएक्टर में भेजकर अभिक्रिया द्वारा विद्युत ऊर्जा प्राप्त कर ली जाती है। इस प्रकार यह युक्ति उत्क्रम विद्युतअपघटन (रिवर्स इलेक्ट्रोलिसिस) के सिद्धान्त पर आधारित है।

ईंधन सेल तंत्र का ऊर्जा संचयन घनत्व (किलोवाट-घंटे प्रति इकाई भार) बैटरियों से कई गुना अधिक होता है। क्योंकि बैटरियों में अभिकारक तथा इलेक्ट्रोड दोनों की ख़पत होती है, जबकि ईंधन सेलों में इलेक्ट्रोड पूर्णतः निष्क्रिय तथा अख़पनशील होते हैं। इस प्रकार बैटरियों की अपेक्षा ईंधन सेलों का जीवन काल तथा शक्ति उत्पादन क्षमता अत्यधिक होती है।

कार्य विधि सिद्धांत

ईंधन सेल के प्रमुख घटक हैं - एनोड, कैथोड और विद्युतअपघट्य। एनोड (अथवा ईंधन इलेक्ट्रोड) पर ईंधन का आक्सीकरण होता है जिससे इलेक्ट्रॉन निर्मुक्त होकर बाह्य परिपथ में प्रवाहित होते हैं। कैथोड पर एनोड से निर्मुक्त हुए इलेक्ट्रॉनों द्वारा आक्सीजन का अपचयन होता है। विद्युत अपघट्य इलेक्ट्रोड अभिक्रियाओं के उत्पाद, आयनी अवयवों, के प्रवाह को माध्यम प्रदान करता है। दोनों इलेक्ट्रोड धातु अथवा धातु आक्साइड के महीन सरंध्रीय पर्दे के रूप में होते हैं, जिनमें जल-अभेद्यन (वाटर प्रूफिंग) के लिए विद्युत उत्प्रेरक (जैसे प्लेटिनम, निकल, निकल आक्साइड आदि) तथा धारा संचयन के लिए कार्बन जैसे पदार्थ समाविष्ट होते हैं। चित्र-1 में प्रारूपी हाइड्रोजन आक्सीजन ईंधन सेल का प्रचालन-कार्य विधि सिद्धांत तथा संरचना विन्यास दिखाया गया है।

सहायक प्रणालियाँ

ईंधन सेल की सहायक प्रणालियों में (अ) प्रचालन प्रणालियाँ जैसे - अभिकारकों तथा विद्युतअपघट्य के

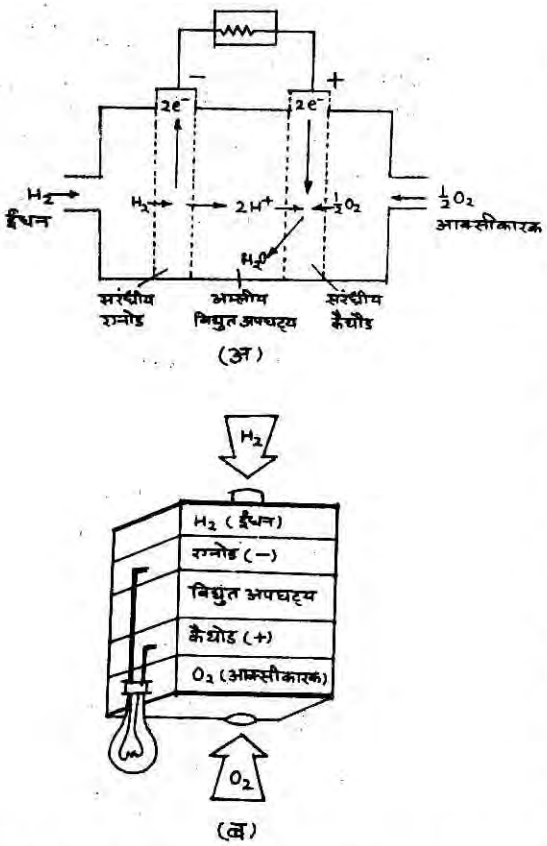

चित्र 1. ईंधन सेल का प्रचालन (अ) कार्य विधि सिद्धान्त (ब) संरचना विन्यास

लिए नियामक, पम्प, ऊष्मा विनिमयक (ब) नियंत्रण एकक जैसे - ट्रान्सड्यूसर, तर्क परिपथ आदि समाविष्ट हैं।

अभिकारकों का हस्तान्तरण : अभिकारकों को रिएक्टर में हस्तान्तरित करने से पहले दाब नियामक द्वारा समरूप से दाबित किया जाता है तथा फिर माँग के अनुसार संकीर्ण परास में कायम रखा जाता है।

अभिक्रिया उत्पादों का निष्कासन : अभिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न जल से विद्युत अपघट्य तनु हो जाता है। इस अतिरिक्त जल को पुनः संचरण तंत्र द्वारा स्थैतिक या गतिक विधियों द्वारा वाष्पित करके पृथक किया जाता है।

ऊष्मीय व्यवस्था का अनुरक्षण : अभिक्रिया द्वारा जनित ऊष्मा को ऊष्मा विनिमयक, संचरण गैस, पंख, विकिरक आदि की सहायता से स्थान्तरित किया जाता है। यह स्थान्तरित ऊर्जा प्रारम्भिक प्रचालन से पहले प्रणालियों के तापन में भी प्रयुक्त की जाती है।

उच्च विश्वसनीयता तथा दीर्घ जीवन काल सुनिश्चित करने के लिए ईंधन सेल तथा संचयन बैटरी संकर शक्ति तंत्र (Fuel cell & storage battery hybrid system) के चुनाव को वरीयता दी जाती है जिसके परिणामस्वरूप माँग की बढ़त के समय बैटरी विसर्जित तथा माँग घटने पर आवेशित हो जाती है।

ऊष्मागतिकी सम्बन्ध :

सेल विद्युत वाहक बल : रासायनिक रूपान्तरण के फलस्वरूप प्राप्त विद्युत कार्य ऊष्मागतिकी उत्क्रम प्रक्रिया के सदृश है। उदाहरण के लिए धारा उत्पन्न न होने की दशा में एक उत्क्रम्य सेल द्वारा नियत तापमान एवं दाब पर किया गया कार्य, विशुद्ध कार्य है। अतः गिब्ब्स मुक्त ऊर्जा में परिवर्तन (वक्र) निम्न सम्बन्धों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है

$$\Delta G = -nFE$$

जहाँ पर n = स्थानान्तरित इलेक्ट्रॉनों की संख्या

F = फेराडे नियतांक, 96,487 कूलंब तथा

E = मानक विद्युत वाहक बल (वोल्ट) है।

तथापि माँग के अनुसार सेल द्वारा धारा उत्पन्न करने की अवस्था में विचलन के कारण, सेल का विद्युत वाहक बल नर्स्ट समीकरण का अनुसरण करता है. यथा –

$$E=E^0-(RT/nF)\ln [\text{सक्रियता (अपचयित आयन)} / \text{सक्रियता (आक्सीकृत आयन)}]$$

जहाँ पर E^0 = मानक सम्यावस्था विभव, (वोल्ट)

R = गैस नियतांक

(8.314 जूल प्रति केल्विन, प्रति मोल) तथा

T = परम ताप (केल्विन) है।

अपचयित तथा आक्सीकृत आयनों की सक्रियता समान होने की दशा में सेल का विद्युत वाहक बल, मानक साम्यावस्था विभव, E^0 कहलाता है।

सेल दक्षता : ईंधन सेलों द्वारा ऊर्जा की प्राप्ति रासायनिक अभिक्रियाओं के दौरान एन्थेल्पी में कमी के कारण होती है । गिब्बस मुक्त ऊर्जा में कमी, अधिकतम ऊर्जा की उत्पत्ति को दर्शाती है। इस प्रकार सेल की दक्षता निम्नलिखित समीकरण द्वारा व्यक्त की जा सकती है -

$(\Delta G/\Delta H)=(\Delta H-T\Delta S)/\Delta H = 1-T\Delta S/\Delta H$

यहाँ ΔH तथा ΔS क्रमशः ऐन्थाल्पी तथा एन्ट्रॉपी परिवर्तनों को दर्शाते हैं। विभिन्न रासायनिक अभिक्रियाओं के लिए इनका मान ऊष्मागतिकी सार संग्रहों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ।

सेल का अतिविभव (ओवर पोटेंशियल) सेल द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली अधिकतम ऊर्जा का निर्धारण करता है ।

ऊर्जा घनत्व : ईंधन सेल के सैद्धान्तिक भारमितीय तथा आयतनमितीय ऊर्जा घनत्व गिब्ब्स समीकरण द्वारा व्युत्पन्न किये जा सकते हैं, यथा–

सैद्धान्तिक भारमितीय (अथवा आयतनमितीय) ऊर्जा घनत्व = (nFE^0)/ सेल के सक्रिय घटकों का कुल ग्राम आण्विक द्रव्यमान (अथवा आयतन)

जबकि प्रयोगात्मक ऊर्जा घनत्व निम्नलिखित सम्बन्धों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है –

=वाट घंटे विसर्जन / सेल का कुल द्रव्यमान, किग्रा (अथवा आयतन, लीटर)

आयतनी ऊर्जा घनत्व सुस्पष्ट रूप से सेल के आकार तथा संरचना से प्रभावित होता है ।

सामान्य निष्पादन अभिलक्षण :

ईंधन सेल का निष्पादन, धारा घनत्व बनाम वोल्टता (अथवा ध्रुवण) वक्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है । एक आदर्श हाइड्रोजन-आक्सीजन ईंधन सेल द्वारा मानक दशा में 1.23 वोल्ट उत्पन्न होना चाहिये । किन्तु व्यवहार में ईंधन सेल से प्राप्त निर्गत वोल्टता, आदर्श सेल से सदैव कम होती है तथा धारा घनत्व की बढ़ती माँग के साथ-साथ उसमें और कमी आ जाती है। आदर्श सेल की तुलना में व्यवहारिक सेल की वोल्टता में होने वाली

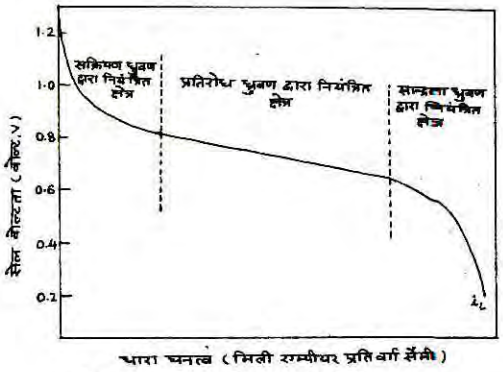

चित्र- 2. ईंधन सेल ध्रुवण वक्र

क्षति को ध्रुवण अथवा अतिविभव कहा जाता है, जिसे चित्र-2 में दर्शाया गया है ।

ईंधन सेल की वोल्टीय क्षति में सम्मिलित हैं :

1. सक्रियण ध्रुवण : यह इलेक्ट्रोड अभिक्रियाओं से सम्बन्धित ऊर्जा क्षति को प्रदर्शित करता है । प्रायः सभी रासायनिक अभिक्रियाओं को आरम्भ होने से पहले एक ऊर्जा अवरोध को पार करना पड़ता है । विद्युत रासायनिक अभिक्रियाओं के लिए सक्रियण ध्रुवण को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है –

$$\eta \text{ (सक्रियण)} = a + b \ln i$$

जहाँ η (सक्रियण) = सक्रियण ऊर्जा (मिली वोल्ट)

a , b = नियतांक, तथा

i = धारा घनत्व

(मिली एम्पीयर प्रति वर्ग सेंमी) है ।

सक्रियण ध्रुवण प्रत्येक इलेक्ट्रोड के लिए स्वतंत्र रूप से सम्बन्ध रखता है, यथा –

η (सक्रियण-सेल) =η (सक्रियण-एनोड) +η (सक्रियण-कैथोड)

सक्रियण ध्रुवण को उन्नत विद्युत उत्प्रेरक, उच्च पृष्ठीय क्षेत्रफल इलेक्ट्रोडों के उपयोग द्वारा कम किया जा सकता है ।

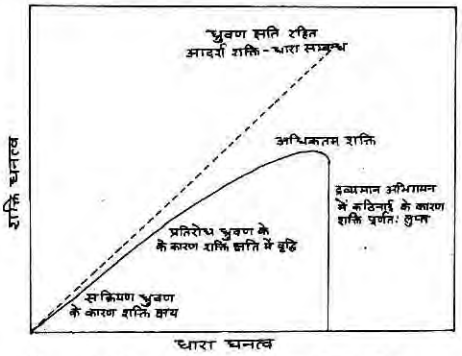

चित्र-3. शक्ति घनत्व बनाम धारा घनत्व वक्र

2. प्रतिरोध (अथवा ओहमीय) ध्रुवण : यह सेल के अन्तर्गत होने वाले समस्त प्रतिरोध क्षयों के योग को प्रदर्शित करता है जिसमें इलेक्ट्रोडों के द्वारा इलेक्ट्रॉनीय प्रतिबाधा, स्पर्श, धारा संचायक तथा विद्युतअपघट्य के द्वारा अयानी प्रतिबाधा आदि सम्मिलित हैं। ये सभी क्षय ओ्म के नियम का अनुकरण करते हैं, यथा —

η (ओमीय) = i R'

जहाँ η (ओमीय) = ओमीय ध्रुवण (मिली वोल्ट)
i = ओम घनत्व (मिली एम्पीयर प्रति वर्ग सेंमी) तथा
R' = सेल की कुल प्रतिबाधा (ओम वर्ग सेंमी)

ओमीय ध्रुवण को इलेक्ट्रोड्रों की परस्पर दूरी को कम करके तथा उच्च संवाहन विद्युतअपघट्यों के उपयोग द्वारा घटाया जा सकता है।

3. सान्द्रता ध्रुवण : यह द्रव्यमान स्थानान्तरण के प्रभाव से सम्बन्धित ऊर्जा क्षय का प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरण के लिए इलेक्ट्रोड अभिक्रियाओं के निष्पादन में अन्तर्बाधा, जो अभिकारकों के विसरण अथवा उत्पादों के अभिक्रिया स्थल से विसरण में अक्षमता से उत्पन्न होती है। वास्तव में धारा एक समय ऐसी अवस्था को पहुँच जाती है जहाँ वह पूर्ण रूप से विसरण प्रक्रिया द्वारा मर्यादित होती है इसे सीमान्त धारा घनत्व (i_L) कहते हैं।

η (सान्द्रता) = (RT/nF) ln (1-i/i_L)

जहाँ η (सान्द्रता) = सान्द्रता ध्रुवण, i = धारा घनत्व, i_L सीमान्त धारा घनत्व (मिली एम्पीयर प्रति वर्ग सेंमी) है। सान्द्रता ध्रुवण प्रत्येक इलेक्ट्रोड पर स्वतंत्र रूप से घटित होता है। यथा समग्र सेल के लिए —

η (सान्द्रता-सेल) =η (सान्द्रता-एनोड) +η (सान्द्रता-कैथोड)

सान्द्रता ध्रुवण को सेल के उच्च तापमान अथवा दाब पर प्रचालन करके अथवा विद्युत अपघट्य के विलोडन (एजिटेशन) द्वारा कम किया जा सकता है।

चित्र-3 में शक्ति घनत्व तथा धारा घनत्व के मध्य सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है जो विभिन्न शक्ति ह्रासों को दर्शाता है। इस प्रकार सेल की अंतस्थ वोल्टता (टर्मिनल वोल्टेज)V को निम्न प्रकार दिया जा सकता है –

V = E^0 - [η (सक्रियण) +η (ओमीय) +η (सान्द्रता)]

ध्रुवण के शुद्ध परिणामस्वरुप व्यवहारिक ईंधन सेल के प्रति वर्ग सेंमी सेल क्षेत्र से 0.5-0.9 वोल्ट डीसी उत्पन्न होती है। ईंधन सेल का निष्पादन, सेल के तापमान तथा अभिकारकों के आंशिक दाब को बढ़ाकर बढ़ाया जा सकता है। किन्तु किसी भी सेल के व्यापारीकरण में उच्च तापमान अथवा दाब पर प्रचालन से उच्च निष्पादन की प्राप्ति तथा इन कठोर परिस्थितियों में निर्माण सामग्री व घटकों के चयन से सम्बन्धित कठिनाई के मध्य सामंजस्य रखना पड़ता है।

ईंधन सेलों का वर्गीकरण :

ईंधन सेलों को व्यापक रूप में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष तथा पुनरुज्जीवित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्यक्ष ईंधन सेलों में सेल के अभिक्रिया उत्पादों को निष्कासित करने की व्यवस्था होती है जबकि पुनरुज्जीवित सेलों में अभिक्रिया उत्पाद से अभिकारकों को पुनः प्राप्त कर उपयोग में लाया जाता है। अप्रत्यक्ष ईंधन सेल वे सेल हैं जिनमें ईंधन को अप्रत्यक्ष रूप से कार्बनिक पदार्थों के रासायनिक (पुनरुत्पादित सेल) अथवा जीव-रसायनिक

(जीव रासायनिक सेल) अपघट्न द्वारा प्राप्त किया जाता है ।

प्रचालन तापमानों के अनुसार ईंधन सेलों को निम्न (25 - 120^0 से.), मध्यम (120 - 500^0 से.), उच्च (500 - 900^0 से.) तथा अतिउच्च (>900^0 से.) तापमान सेलों में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

ईंधन सेल संयंत्र की लागत तथा निष्पादन प्रमुख रूप से सेल में प्रयुक्त किये जाने वाले अभिकारकों के चुनाव पर निर्भर करता है। ईंधन सेल संयंत्र में सामान्यत: प्रयुक्त किये जाने वाले ईंधनों को उनकी विद्युत-रासायनिक क्रियाशीलता के अनुसार निम्न प्रकार से व्यवस्थित किया जा सकता है –

हाइड्राजीन > हाइड्रोजन > एल्कोहल >
कार्बन मोनोआक्साइड > हाइड्रोकार्बन > कोयला

आक्सीकारक के रूप में प्राय: सभी प्रकार के ईंधन सेलों में विशुद्ध अथवा वायु से पृथक की गयी आक्सीजन प्रयोग में लायी जाती है । इसके अतिरिक्त कुछ ईंधन सेल संयंत्रों में हाइड्रोजन परआक्साइड तथा हेलोजनों का भी आक्सीकारक के रूप में उपयोग होता है ।

विद्युतअपघट्य की प्रकृति के अनुसार प्रमुख ईंधन सेलों का विस्तृत वर्णन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :

(अ) अम्लीय ईंधन सेल

अम्लीय ईंधन सेल जिनमें आयनी संवाहन हाइड्रोजन अथवा हाइड्रोनियम (H_3O^+) आयनों द्वारा होता है. विद्युतअपघट्य के रूप में प्राय: सल्फ्यूरिक अथवा फॉस्फोरिक अम्ल का प्रयोग किया जाता है. इन सेलों में महीन प्लेटिनम धातु विद्युत उत्प्रेरक तथा ग्रेफाइट का उपयोग धारा संग्राहक के रूप में किया जाता है ।

सेल प्रदर्शन : $H_2(Pt) / H_2SO_4$ अथवा $H_3PO_4/O_2(Pt)$

एनोड अभिक्रिया : $H_2 \rightarrow 2H^+ + 2e^-$

कैथोड अभिक्रिया : $1/2\ O_2 + 2H^+ + 2e^- \rightarrow H_2O$

समग्र सेल अमिक्रिया : $H_2 + 1/2O_2 \rightarrow H_2O$

अम्लीय सेलों में फास्फोरिक अम्ल अधिमानित विद्युतअपघट्य है क्योंकि यह ईंधन सेल वातावरण में अति स्थायी तथा अल्प संक्षारक है। सल्फ्यूरिक अम्ल कार्बनिक पदार्थों से अभिक्रिया करता है अत: मध्यम तापमानों पर यह कार्बनिक ईंधनों के अनुकूल नहीं है । हाइड्रोक्लोरिक अम्ल ईंधन सेलों के लिए सर्वथा उपयुक्त नहीं है क्योंकि क्लोराइड आयनों का अधिशोषण करके प्लेटिनम इक्लेक्ट्रोड विषाक्त हो जाते हैं ।

फास्फोरिक अम्ल ईंधन से 150 से 220^0 सेल्सियस के तापमानों पर प्रचालित होते हैं । नीचे तापमानों पर कार्बन तथा प्लेटिनम धातुओं का स्थायित्व प्रभावित होता है । फॉस्फोरिक अम्ल ईंधन सेलों की प्रमुख श्रेष्ठता (i) विद्युतअपघट्य का स्थायित्व (ii) श्रेष्ठ निष्पादन (5% तक कार्बन मोनोक्साइड अंतर्विष्ट ईंधनों से भी) तथा (iii) उत्पन्न जल का ठीक से पृथक्करण है। इनका प्रमुख दोष मन्द कैथोड निष्पादन है जिसमें सुधार के सक्रिय प्रयास जारी है ।

(ब) क्षारीय ईंधन सेल

क्षारीय ईंधन सेलों में आयनी संवाहन हाइड्राक्सिल (OH^-) आयनों द्वारा सम्पन्न होता है । जलीय पोटेशियम हाइड्राक्साइड को प्राय: विद्युतअपघट्य निकल, चाँदी, स्वर्ण अथवा धातु आक्साइडों को विद्युत उत्प्रेरक, तथा कार्बन को धारा सग्राहक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । सान्द्र पोटेशियम हाइड्रोक्साइड सेल अपेक्षाकृत उच्च तापमान (250^0 सेल्सियस) तथा तनु हाइड्रोक्साइड सेल निम्न तापमान (< 120^0 सेल्सियस) पर कार्य करते हैं ।

सेल प्रदर्शन : $H_2(Ni) / KOH /O_2(C, Ag)$

एनोड अभिक्रिया : $H_2 + 2OH^- \rightarrow 2H_2O + 2e^-$

कैथोड अभिक्रिया : $1/2\ O_2 + 2e^- + H_2O \rightarrow 2OH^-$

समग्र सेल अभिक्रिया : $H_2 + 1/2O_2 \rightarrow H_2O$

अम्लीय सेलों की तुलना में क्षारीय सेलों की श्रेष्ठतायें निम्नलिखित हैं –

(i) उत्तम कैथोड निष्पादन

(ii) कम लागत की निर्माण सामग्री (C, Ni, Ag, SS) का उपयोग, तथा

(iii) अम्लीय सेलों से सम्बद्ध संक्षारण समस्या की अनुपस्थिति ।

इन सेलों से मुख्य असुविधा विद्युतअपघट्य का कार्बन आक्साइडों से अभिक्रिया करके पोटेशियम कार्बोनेट का बनना है जो सेल के निष्पादन को गम्भीर रूप से प्रभावित करता है। इस प्रकार यह सेल मात्र ऐसे क्षेत्रों में उपयोगी हैं जहाँ विशुद्ध हाइड्रोजन और आक्सीजन का उपयोग किया जाता है (जैसे अंतरिक्ष)।

(स) द्रवित कार्बोनेट ईंधन सेल

इन सेलों में क्षारीय धातुओं (लिथियम, सोडियम, पोटेशियम आदि) के कार्बोनेटों को विद्युतअपघट्य के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इन सेलों में आयनी संवाहन कार्बोनेट आयनों के द्वारा सम्पन्न होता है। इनका प्रचालन तापमान 600 से 700^0 सेल्सियस है जो विद्युतअपघट्य के द्रवांक से अधिक है। इन उच्च तापमानों पर निकल अथवा निकल आक्साइड को विद्युत उत्प्रेरक के रूप में उपयोग में लाया जाता है।

सेल प्रदर्शन : $H_2 (Ni) / M_2CO_3 / O_2 (C, Ag)$
$M = Li, Na, K$ आदि

एनोड अभिक्रिया : $CO_3^{2-} + H_2 \rightarrow CO_2 + H_2O + 2e^-$

कैथोड अभिक्रिया : $1/2\ O_2 + CO_2 + 2e^- \rightarrow CO_3^{2-}$

समग्र सेल अभिक्रिया : $H_2 + 1/2O_2 \rightarrow H_2O$

गुण – (1) द्रवित कार्बोनेट ईंधन सेलों की प्रमुख विशेषता सक्रियण ध्रुवण कम होने के कारण, इनका कुशल निष्पादन है। (2) क्योंकि 600 से 700^0 सेल्सियस तापमानों पर ईंधन में उपस्थित कार्बन मोनोआक्साइड जल गैस विस्थापन अभिक्रिया द्वारा हाइड्रोजन में परिवर्तित हो जाती है :

$$CO + H_2O \rightarrow CO_2 + H_2$$

अतः इन सेलों में कार्बन मोनोआक्साइड युक्त ईंधन भी उपयोग में लाये जा सकते हैं।

दोष – (1) उच्च ताप पर प्रचालन के कारण सेल का दीर्घ जीवन सुनिश्चित करने के लिए संगत पदार्थों के चयन में कठिनाई आती है (2) इन सेलों में कैथोड अभिक्रियाओं को पूर्ण करने के लिए कार्बन डाईआक्साइड की आवश्यकता पड़ती है। अतः यह सेल कार्बनमय ईंधन संसाधित्र, जैसे - पुनरुत्पादन तथा कोल गैसीफायर के लिए सर्वधा उपयुक्त हैं।

(द) ठोस आक्साइड ईंधन सेल

ठोस आक्साइड ईंधन सेलों में ठोस, असरंध्रीय धातु आक्साइड (जैसे स्थायीकृत जिरकोनिया) को विद्युत अपघट्य के रूप में उपयोग में लाया जाता है। प्रीसीडायमियम अथवा इंडियम आक्साइड को कैथोड तथा निकल को एनोड के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इन सेलों में आयनी संवाहन क्रिस्टल जाली के द्वारा आक्सीजन आयनों से होता है तथा यह उच्च तापमानों ($900\text{-}1000^0$ सेल्सियस) पर प्रचालित होती हैं। ठोस आक्साइड ईंधन सेल नलिकाकार स्टैक में विन्यासित होती हैं जबकि उपरोक्त वर्णित सभी सेल सपाट आकार के होते हैं।

सेल प्रदर्शन : $H_2 (Ni) / ZrO_2 / O_2 (Pr_n O_{11})$

एनोड अभिक्रिया : $H_2 + O^{2-} \rightarrow H_2O + 2e^-$

कैथोड अभिक्रिया : $1/2\ O_2 + 2e^- \rightarrow O^{2-}$

समग्र सेल अभिक्रिया : $H_2 + 1/2O_2 \rightarrow H_2O$

गुण (1) उच्च ताप पर प्रचालन होने के कारण इन सेलों में विद्युत उत्प्रेरक के रूप में उत्कृष्ट धातुओं की आवश्यकता नहीं पड़ती। (2) बहिष्कृत ऊष्मा को ऊर्जा में परिवर्तित करके उपयोग में लाया जा सकता है। (3) कैथोड अभिक्रियाओं को पूर्ण करने के लिए CO_2 की आवश्यकता नहीं पड़ती।

दोष – इन सेलों से मुख्य असुविधा इनका उच्च प्रचालन तापमान है जो निर्माण सामग्री के चुनाव में कठिनाई उत्पन्न करता है।

(ई) ठोस बहुलक विद्युत अपघट्य ईंधन सेल (SPE)

ठोस बहुलक विद्युत अपघट्य ईंधन सेल, ठोस आयन विनिमय झिल्ली को विद्युत अपघट्य के रूप में प्रयोग करते हैं। जैसे - नाफियान (परफ्लोरेटिड सल्फोनिक अम्ल झिल्ली)

$$(CF_2\ CF_2)_n\ \underset{\underset{CF_2}{|}}{CFO}\ (CF_2\ \underset{\underset{CF_3}{|}}{CFO})_m\ CF_2\ CF_2\ SO_3Na$$

प्रमुख विशिष्टतायें –

(1) इनके विद्युतअपघट्य के वाष्पीकरण, अवस्था परिवर्तन तथा स्थान बदलने की सम्भावना नहीं है ।

(2) इन सेलों में द्रव अवस्था में मात्र जल ही उपस्थित होता है इससे संक्षारण की सम्भावना बहुत कम होती है

मुख्य असुविधायें –

(1) सेल के निष्पादन के लिए ठोस बहुलक विद्युतअपघट्य का जल संतृप्त होना अति आवश्यक है। परिणाम स्वरूप सेल के प्रचालन के लिए उत्पादित जल की गैस के साथ अभिक्रिया वाष्पीकरण की दर से अनिवार्य रूप से कम होनी चाहिये । इस परिवेश में ये सेल सामान्य दाब पर 60° सेल्सियस से कम तथा उच्च दाब पर 120^0 सेल्सियस तापमान तक ही प्रचालित किये जा सकते हैं।

(2) ठोस बहुलक विद्युतअपघट्य लगभग 60° सेल्सियस तापमान पर जमने लगता है तथा हिमीकरण-शुष्कन (Freezing-drying) परिघटना का अनुभव करता है। इस कारण इन सेलों के इन उपयोगों पर प्रतिबंध लग जाता है जहाँ न्यून तापमान की आवश्यकता होती है ।

पुनरुत्पादित ईंधन सेल (Reformer fuel cells)

पुनरुत्पादित ईंधन सेलों में ईंधन कार्बनमय पदार्थों से पुनरुत्पादन अथवा आंशिक आक्सीकरण प्रक्रम द्वारा प्राप्त किया जाता है। उदाहरण के लिए हाइड्रोकार्बन की भाप के साथ पारस्परिक क्रिया से हाइड्रोजन तथा कार्बन डाइआक्साइड गैसें प्राप्त होती हैं ।

$$C_xH_y + H_2O \rightarrow xCO + (x+y/2)H_2$$

$$CO + H_2O \rightarrow CO + H_2$$

हाइड्रोजन गैस को कार्बन डाइआक्साइड से पृथक करके ईंधन सेल तंत्र में भेज दिया जाता है। किन्तु पुनरुत्पादन तथा शुद्धीकरण प्रक्रियायें सामान्यत: पारम्परिक शक्ति उत्पादन युक्तियों से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकतीं अत: इनका कोई व्यापारिक महत्व नहीं है ।

जीव-रासायनिक ईंधन सेल

जीव-रासायनिक ईंधन सेल प्राय: आक्सीजन कैथोड तथा किण्वक (अथवा सूक्ष्मजीव) युक्त कार्बनिक पदार्थ विद्युतअपघट्य में निमज्जित एनोड का उपयोग

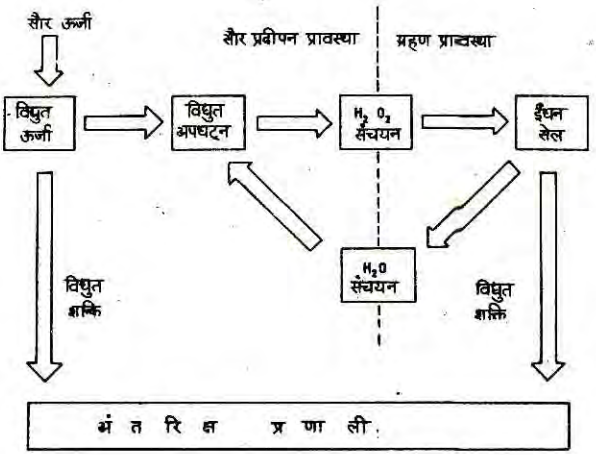

चित्र - 4 : अंतरिक्षयान पुनरुज्जीवित ईंधन सेल तंत्र का सिद्धान्त

करते हैं। इन सेलों की निष्पादन क्षमता अन्य ईंधन सेलों की अपेक्षाकृत बहुत कम होती है अत: इनका कोई प्रायोगिक महत्व नहीं है ।

जीव-रासायनिक ईंधन सेलों में किण्वक अथवा सूक्ष्मजीव विशुद्ध विद्युत रासायनिक उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। सेल की रासायनिक अभिक्रियाओं को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है :

$$E_z + A \leftrightarrows E_z A$$

$$E_z A + M \leftrightarrows M[E_z A]$$

$$M[E_z A] \leftrightarrows M + E_z + B + H^+ + e^-$$

जहाँ पर E_z, किण्वक; A, अभिकारक; M इलेक्ट्रोड सतह तथा B अभिक्रिया उत्पाद को दर्शित करते हैं. उदाहरण के लिए हाइड्रोसीक्वीनान-क्वीनान-लेकेज किण्वक ईंधन सेल :

हाइड्रासीक्वीनान-क्वीनान (Zn)/लेकेज किण्वक/O_2(Pb)

$2e^- \rightarrow$ क्वीनान ↑ लेकेज अपचयित ↓ $1/2O_2$

↑ $2H^+$ ↓ हाइड्रासीक्वीनान ↑ लेकेज आक्सीकृत ↓ H_2O

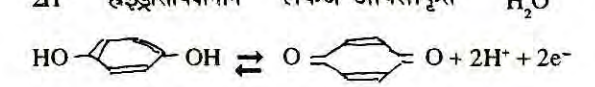

हाइड्रासीक्वीनान क्वीनान

पुनरुज्जीवित ईंधन सेल तंत्र

पुनरुज्जीवित ईंधन सेल प्रमुख रूप से सौर ऊर्जा द्वारा प्रकाश वोल्टीय अथवा सौर गतिक प्रक्रिया के फलस्वरूप अर्जित विद्युत ऊर्जा के संचयन का कार्य करते हैं। विद्युत अपघटक संचित विद्युत ऊर्जा का उपयोग करके ईंधन सेल द्वारा उत्पादित जल को पुनः अभिकारकों (हाइड्रोजन तथा आक्सीजन) में रूपांतरित कर देता है। जिनको अभिकारक टंकियों में संचयित करके पुनः ईंधन सेल में भेज दिया जाता है। विद्युतअपघटन प्रक्रिया उच्च दाब पर होती है अतः आर्द्रित गैसों को पुनः ईंधन सेल में भेजने से पहले दाब नियामक द्वारा उनका दाब कम कर दिया जाता है। आक्सीजन गैस ईंधन सेल स्टैक में सीधे प्रवेश करती है जबकि हाइड्रोजन गैस सेल स्टैक पुनः चक्रण लूप के अनुप्रवाह (डाउन स्ट्रीम) से प्रवेश करके जलवाष्प के निष्कासन में सहायता करता है।

पुनरुज्जीवित ईंधन सेल तंत्र, ईंधन सेलों के व्यवसायीकरण की दिशा में मील का पत्थर है। अंतरिक्ष अभियानों के लिए पुनरुज्जीवित ईंधन सेल बहुत उपयोगी हैं। अंतरिक्षयान पुनरुज्जीवित ईंधन सेल तंत्र में सौर प्रदीपन प्रावस्था के समय विद्युतअपघट्न अभिक्रियायें तथा ग्रहण प्रावस्था के दौरान ईंधन सेल अभिक्रियायें कार्यान्वित होती हैं। इस प्रकार निरन्तर ऊर्जा की आपूर्ति सुनिश्चित होती है। चित्र 4 में अतंरिक्षयान पुनरुज्जीवित ईंधन सेल तंत्र का कार्य विधि-सिद्धान्त दर्शाया गया है।

उपयोग :

ईंधन सेलों के व्यापारीकरण को लगभग दो दशक पहले ही व्यवहारिक मान्यता मिल गयी थी तथा इस दिशा में सम्बन्धित प्रयास लगातार जारी हैं।

भौमिक उपयोगों के लिए अन्य वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की अपेक्षा ईंधन सेल, ईंधन के चुनाव (हाइड्रोजन, हाइड्राजिन, हाइड्रोकार्बन, जैविक पदार्थ, प्राकृतिक गैसें, कोल गैस, एल्कोहल, आस्रुत, इत्यादि) में लचीलापन तथा उच्च निष्पादन प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त यह पर्यावरण हितैषी भी हैं। तथापि ईंधन सेल प्रौद्योगिकी से अनभिज्ञता, आधारभूत सुविधाओं की कमी तथा भारी लागत इनके व्यापारीकरण में बाधक हैं।

शून्य विसर्जन वाहनों (ZEV) के विकास में ईंधन सेलों के योगदान को विश्व ने माना है। 5000 किलोमीटर तक की अविराम दूरी तय करने वाले 150 किलोवाट क्षमता के विद्युतवाहन अभिकल्पित किये जा चुके हैं। ईंधन सेलों का दूसरा प्रमुख उपयोग सुदूर क्षेत्रों में शक्ति उत्पादन है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान में 30 मेगावाट क्षमता से भी अधिक शक्ति के ईंधन सेल संयंत्र स्थापित किये जा चुके हैं। यद्यपि ईंधन सेल प्रौद्योगिकी में निरन्तर सुधार के परिणामस्वरूप इनकी निर्माण लागत में भारी गिरावट आयी है तथापि अभी भी ईंधन सेल इकाइयों की प्रारम्भिक लागत लगभग 1000 अमेरिकी डालर प्रति किलोवाट ऊर्जा है जो व्यवहार संगत लागत से दोगुनी है। ईंधन सेल की निर्माण प्रौद्योगिकी में उच्च गति से जारी विकास के फलस्वरूप निकट भविष्य में कुछ निश्चित क्षेत्रों में उनके व्यापारिक उपयोग की सुखद सम्भावनायें हैं।

अंतरिक्ष उपयोग के लिए ईंधन सेलों की उपादेयता का प्रमुख आकर्षण प्रत्यक्ष प्रदूषण रहित ऊर्जा उत्पादन है। शक्ति, ऊष्मा तथा जल तीनों मुहैय्या कराने के कारण ईंधन सेल अंतरिक्षयान के परिस्थिति चक्र के सर्वथा अनुरूप हैं। इसके अतिरिक्त द्रवीय हाइड्रोजन तथा आक्सीजन युगमित अंतरिक्ष यान की नोदन प्रणाली में पहले ही उपलब्ध होते हैं।

अंतरिक्ष यान प्रमोचन एक अत्यंत महँगी प्रक्रिया है, प्रत्येक किलोग्राम अधिक भार के प्रमोचन के लिए यथेष्ठ आर्थिक भार वहन करना पड़ता है। इसलिए द्रव्यमान लघुकरण (मास रिडक्शन) अंतरिक्षयान की अभिकल्पना के लिए एक महत्वपूर्ण मानदंड है। ईंधन सेलों का ऊर्जा संचयन घनत्व (किलोवाट-घंटे प्रति इकाई भार) परम्परागत बैटरियों से कई गुना अधिक होता है। अतः भविष्य में अंतरिक्ष क्षेत्र में इनके उपयोग की भारी सम्भावनायें हैं।

प्रयोगात्मक रूप में ईंधन सेलों को जेमिनी, अपोलो तथा शटल आदि अंतरिक्षयानों में मर्यादित समय के लिए उपयोग किया जा चुका है। सारणी-1 में अतंरिक्ष

सारणी - 1

अंतरिक्ष में उपयोग किये गये प्रमुख सेलों का तुलनात्मक विश्लेषण

प्रकार	H_2 / आयन विनिमय झिल्ली / O_2	H_2 / KOH / O_2	H_2 / KOH / O_2
निर्माता	जनरल इलेक्ट्रिक कं.	प्रेट एंड व्हीटनी एयर क्राफ्ट कं.	यूनाइटेड टेक्नोलॉजी कॉर्पोरेशन
विद्युत अपघट्य	कैथोड विनिमय रेजिन	80 - 85 % KOH	30 - 40 % KOH
प्रचालन तापमान (°से.)	40 - 60	200 - 250	83 - 105
वोल्टता (वोल्ट)	23.3 - 26.5	27.0 - 31.0	27.5 - 32.5
धारा घनत्व (मि. ए. / व. से.)	15	92	200
दर (किलोवाट)	0.35	1.40	7.0
दक्षता (प्रतिशत)	50 - 60	60	61.8
अभिकारकों की खपत (कि. ग्रा. / कि. वा. घंटे)	0.41	0.36	3 दिवसीय अभियान में 450 किग्रा
आयतन	लं = 66 सेंमी व्या = 33 सेंमी	लं =110 सेंमी व्या = 57 सेंमी	ऊं x चौ x लं = 35 x 30 x 101 ($सेंमी^3$)
भार (किग्रा)	31	110	91
सेवा अवधि (घंटे)	400 - 800	400 - 1500	2000
अंतरिक्ष यान	जेमिनी	अपोलो	शटल

लं - लंबाई, चौ - चौड़ाई, ऊं - ऊंचाई तथा व्या - व्यास

परियोजनाओं में उपयोग किये गये प्रमुख ईंधन सेलों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। भविष्य में विस्तृत अंतरिक्ष शटल परियोजनाओं में पुनरुज्जीवित ईंधन सेल तंत्र के उपयोग की योजनायें हैं । हेमिल्टन स्टेन्डर्ड डिवीजन द्वारा विकसित ठोस बहुलक विद्युतअपघट्य सेलों का, 10 वर्ष से भी अधिक निरन्तर-प्रचालन-समय के लिए, सफल परीक्षण किया जा चुका है। ईंधन सेलों की एक अतिरिक्त श्रेष्ठता अभिक्रिया उत्पाद के रूप में पीने योग्य जल उपलब्ध कराना है । इस विशिष्टता के कारण मानव अंतरिक्ष उड़ानों के लिए ईंधन सेलों का कोई जवाब नहीं है ।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1994) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

सूक्ष्मकणीय इन्वैस्टमैंट कास्टिंग : एक अभिनव धातुकार्मिक तकनीक

डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा
वैज्ञानिक "ई",
रक्षा धातुकार्मिक अनुसंधान प्रयोगशाला,
हैदराबाद - 500 258.

वैमानिकी क्षेत्र में उपयोग के लिए पिछले 50 वर्षों से नई नई धातुओं की निरंतर खोज हो रही है व जटिल कलपुर्जों के निर्माण हेतु अनेक विधियों का विकास हुआ है। इस क्रम में सूक्ष्मकणीय इन्वैस्टमैंट प्रणाली का विकास धातुकार्मिकी के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी चरण माना जा सकता है। पिछले 10 वर्षों में इस विधि से तैयार किये अधिमिश्रधातु के इन्टीगरल रोटर-डिस्कों की मांग वैमानिक इंजनों में काफी बढ़ी है क्योंकि उच्चगुणों से युक्त यह रोटर आर्थिक दृष्टि से भी अत्यधिक उपयोगी हैं। प्रस्तुत लेख में प्रयोगशाला स्तर पर विकसित इस अभिनव सूक्ष्मकणीय इन्वैस्टमैंट प्रणाली के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

मानव विकास क्रम में धातुओं की खोज एक क्रांतिकारी कदम था। जब मानव ने पहली बार पत्थरों के स्थान पर ताम्र-औजारों व हथियारों का प्रयोग किया तब उनकी विश्वसनीयता व उपयोगिता देखकर वह प्रसन्नता से नाच उठा होगा। कालांतर में ताम्र युग का स्थान लौह-युग ने ले लिया। लौह-औजार अपनी उत्तमता के कारण घर-घर प्रयोग में लाये जाने लगे। पर मानव नाम का यह दोपाया तब भी हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठा तथा अपने उपयोग के लिए उत्तम से उत्तम धातुओं और मिश्र धातुओं की खोज व विकास की यात्रा पर सदैव अग्रसर होता रहा।

वायुयानों व जलयानों के विकास ने इस खोज-यात्रा को गति प्रदान की क्योंकि प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए अब मनुष्य को उन धातुओं, मिश्रधातुओं तथा अधिमिश्रधातुओं की आवश्यकता थी जिन पर उच्च ताप, दाब, जल तथा वायु के दुष्प्रभावों से कोई हानि न पहुँचे। पहले व द्वितीय महायुद्धों के कारण हुई अस्त्र-शस्त्रों की होड़ ने इस विकास की प्रगति को तीव्रता प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बीसवीं शताब्दी के चालीसवें दशक में पहली बार वायुयान में गैस-टरबाइन इंजन का प्रयोग किया गया। इस तकनीक में प्रगति के लिए निरंतर अन्वेषण किये गये। निकल आधारित मिश्रधातुओं का विकास, पिछले पाँच दशकों में धातु-कार्मिकी के क्षेत्र में हुई खोजों में सर्वाधिक क्रांतिकारी कदम था। धातु कर्मियों ने इन अधिमिश्रधातुओं (सुपरएलॉयज) के प्रति विशेष उत्सुकता दिखाई और अनेक अन्वेषण किये। उत्तम गुणों से युक्त इन मिश्रधातुओं की मांग वैमानिक इंजनों के विकास के साथ साथ विश्व भर में बढ़ने लगी। निकल आधारित अधिमिश्रधातुओं में उच्च ताप सहने की अदभुत क्षमता है और उच्च ताप पर भी उनके गुणों में कोई कमी नहीं आती है।

निकल अधिमिश्रधातुओं के गुणों में सुधार लाने तथा उन्हें उच्च ताप-सह बनाने के लिए निरंतर प्रयोग किए जाते रहे, तथा कई नई तकनीकें विकसित की गयीं। इनमें समतापकुट्टन, (आइसोथर्मल फोर्जिंग), कणीकरण (एटमाइजेशन), चूर्णधातुकार्मिकी, उष्ण समस्थिर दबाव क्रिया (हॉट आइसोस्टैटिक प्रेसिंग), अनुदिक ठोसीकरण (directional solidification) तथा एकल क्रिस्टल तकनीक प्रमुख हैं।

वैमानिक कलपुर्जों के मितव्ययिता पूर्ण निर्माण के लिए इन्वैस्टमैंट कास्टिंग ने विश्व भर के वायुयान इंजन निर्माताओं का ध्यान आकर्षित किया, उदाहरणत : विमान इंजन के लिए 10 किग्रा. की रोटर-डिस्क बनाने में 180 किग्रा. के धातु-पिंडक की आवश्यकता पड़ती है पर इन्वैस्टमैंट कास्टिंग द्वारा यह केवल 40 किग्रा. के पिंडक से बनायी जाती है। परंपरागत विधि की तुलना में आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद होने पर भी स्थूल कणों (coarse grains) तथा असंमागी संरचना (inhomo-geneous structure) के कारण इस नवीन प्रक्रिया द्वारा निर्मित डिस्क के प्रयोग को प्रोत्साहित नहीं किया गया।

पिछले कुछ वर्षों में धातु-गलन व कास्टिंग के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई और पहले की तुलना में अति उत्तम अधिमिश्रधातुओं का निर्माण होने लगा। सातवें दशक के अंतिम वर्षों में इन्वैस्टमैंट कास्टिंग द्वारा बनाये गये रोटर, हैलीकॉप्टर इंजनों तथा जैट विमानों की सहायक ऊर्जा इकाइयों में लगातार प्रयोग किये जाने लगे। इस रोटर के नाभिकीय भाग (hub) में सूक्ष्मकणीय संरचना होती है जिससे इसमें उत्तम लघु-चक्र-श्रांति निरोधक (low cycle fatigue resistance) क्षमता उत्पन्न होती है। इस विशेष गुण पर पहले चूर्ण धातुकार्मिक विधि का ही एकाधिकार माना जाता था। चूर्ण विधि से बनायी गयी डिस्क के साथ अलग से ढाले हुए फलकों (blades) को अनेक विधियों द्वारा जोड़ा जाता था; (i) डिस्क और फलकों की एक साथ इंटीगरल कास्टिंग, (ii) पृथक ढ़ाली गयी डिस्क व पृथक ढ़ाले गये फलकों का जोड़, (iii) चूर्ण धातुकर्मिकी द्वारा निर्मित डिस्क के नाभिकीय भाग से पृथक ढ़ाले हुए फलक-चक्र का डिफ्यूजन बंधन, (iv) चूर्ण धातुकर्मिकी द्वारा निर्मित डिस्क के नाभिकीय भाग का एकल क्रिस्टल फलकों से डिफ्यूजन बंधन, (v) पृथक पृथक फलकों का डिस्क से यांत्रिक अनुबंधन।

इन्टीगरल कास्टिंग विधि द्वारा बनाये गये रोटर में, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट नाभिकीय भाग में सूक्ष्म-कण संरचना होती है जबकि फलकों में स्थूल कण होते हैं इसीलिए फलकों में उत्तम क्रीप प्रतिरोधक शक्ति तथा केन्द्र में उत्तम लघु-चक्र-श्रांति-निरोधक शक्ति केवल एक ही तकनीक से विकसित हो जाती है। उच्च गति पर घूमने वाले अधिमिश्रधातु के चक्रीय कल पुर्जों के लिए यह एक आदर्श तकनीक है जिसे रक्षा कार्मिक अनुसंधान प्रयोगशाला (DMRL) में हल्के लड़ाकू विमान के इंजन में प्रयोग के लिए हाल ही में विकसित किया गया है। इन पुर्जों को उच्च अंतर्राष्ट्रीय मापदंड के आधार पर जाँचा परखा जाता है। इनके आवश्यक गुण तालिका -1 में दिये गये हैं। इस तकनीक के विकास की प्रक्रिया का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। साँचों का निर्माण इस तकनीक का प्रथम सोपान है।

इन्वैस्टमैंट साँचे का निर्माण

सर्वप्रथम सही नमूने की उचित रुपदा (डाई) का निर्माण किया जाता है। उसी के आधार पर मोम अन्तः क्षेप यंत्र (वैक्स इन्जेक्शन मशीन) का प्रयोग करते हुए मोम का नमूना तैयार किया जाता है। यह मोम का नमूना असली पुर्जे का यथावत प्रतिरूप होता है। इस नमूने में उचित द्वार (गेट्स), उद्रत (राइजर्स) व संग्रहक (स्प्रू) इत्यादि भी मोम के ही होते हैं पर इनको सादी विधि से अलग से बनाया जाता है। और प्रमुख नमूने के साथ उचित स्थानों पर जोड़ दिया जाता है। मोम के सम्पूर्ण नमूने को विशेष चीनी मिट्टी (सिरामिक) के घोल में डुबोया जाता है तत्पश्चात इन गीले साँचों पर चीनी मिट्टी के मोटे चूर्ण का छिड़काव किया जाता है। यह प्रक्रिया छह-सात बार दोहरायी जाती है जब तक कि आवश्यकतानुसार शक्तिशाली साँचा तैयार नहीं हो जाता। नमूना बनाने से लेकर साँचा बनाने तक की इस प्रक्रिया में उच्च दक्षता व संकेन्द्रित यत्न की आवश्यकता होती है। यदि इन साँचों में कोई भी त्रुटि रह जाती है तो अंतिम उत्पाद में भी दोष आ जाता है। साँचों को स्टीम आटोक्लेव में उचित दबाव पर गर्म कर के मोम को पिघला दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त हुए साँचे में नमूने के बाह्य सही आकार का यथावत प्रतिरूप होता है। साँचे में किसी संभावित दरार या दोष आदि की भली प्रकार जाँच की जाती है व इसे अच्छी तरह धोकर सुखा दिया जाता है। पिघली मिश्रधातु डालन से पहले इन साँचों को गर्म करना आवश्यक है। इस प्रकार

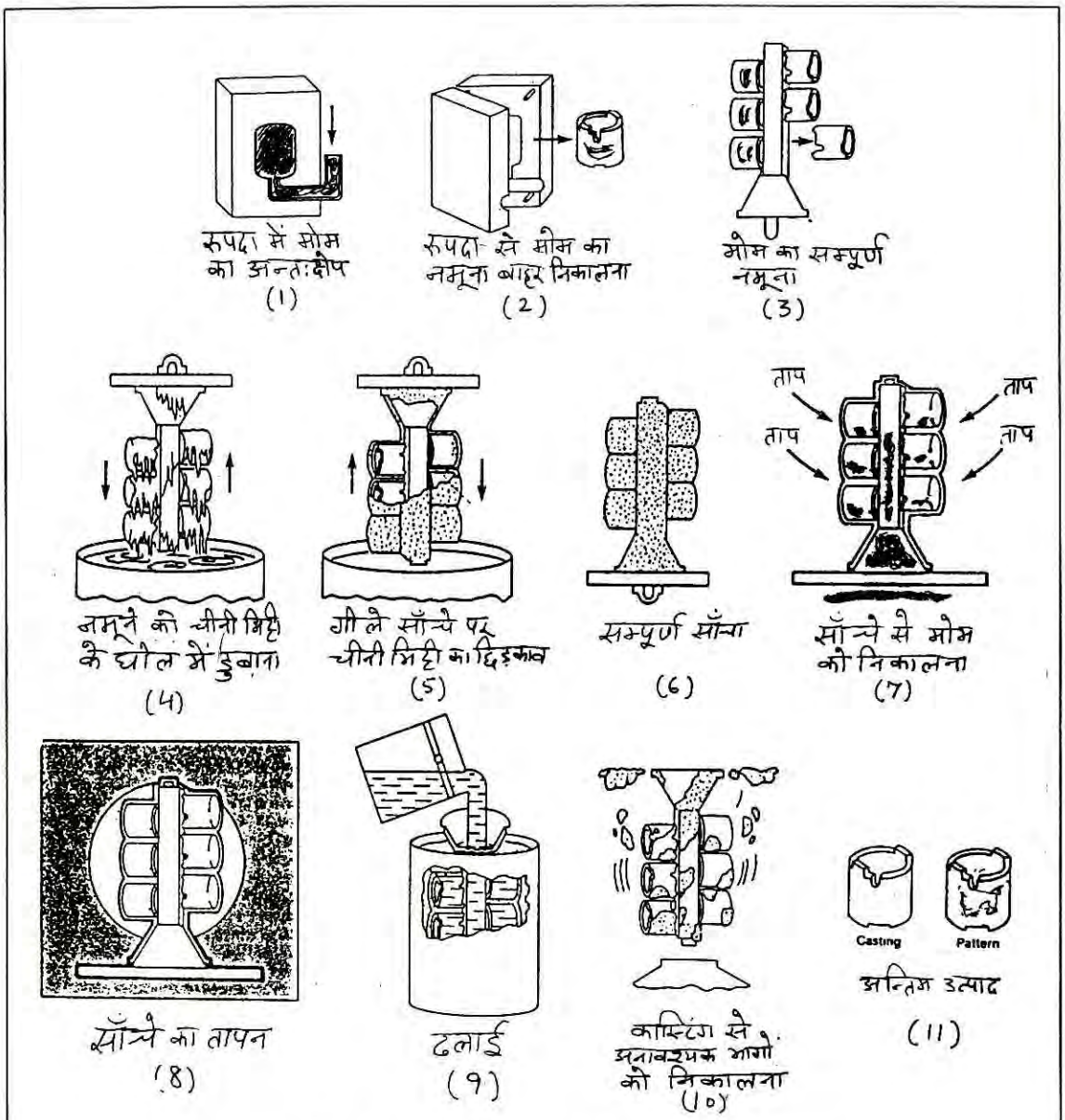

चित्र - 1 : इन्वैस्टमैंट कास्टिंग तकनीक के प्रमुख चरण

से ढ़ाली गयी कास्टिंग से सिरामिक के अवशेष पदार्थ को साफ करके अनावश्यक भागों को काट दिया जाता है। चित्र-1 में इन्वैस्टमैंट विधि के विभिन्न चरणों को अनुक्रमानुसार दर्शाया गया है ।

मिश्रधातु का चुनाव :

तालिका -1 में दिये गये आवश्यक गुणों के अनुसार उच्च ताप निरोधक अधिमिश्रधातु टाइटेनियम और एल्यूमिनियम की काफी अधिक मात्रा होनी चाहिए।

तालिका - 1 : रोटर कलपुर्जों की आपेक्षिक विशेषताएँ

"अ" – आतनन गुण

गुण	सामान्य ताप (25^0से.)	उच्च ताप (538^0 से.)
अन्तिम आतनन बल (मैगा पॉस्कल)	931	965
व्याकर्षण बल (मैगा पॉस्कल	786	793
दीर्घण (प्रतिशत)	5.0	5.0

"ब" – क्रीप निरोधक

ताप (0^0C)	बल (मैगा पॉस्कल)	विदारण अवधि (घंटे)	दीर्घण (प्रतिशत)
982 ± 2	190	23	4.0
760 ± 2	586	60	1.5

"स" – लघु-चक्र-भ्रांति निरोधक क्षमता

स्थिति	ताप (0^0से.)	परिक्षण प्रत्याबल (मैगा पॉस्कल)	विकार	न्यूनतम चक्र संख्या
नाभिकीय भाग	427	1310	± 1	4.0
प्रधि (RIM)	649	696	± 0.05	1.5

आधुनिक श्रेणी की उत्तम गुणों वाली निकल आधारित अधिमिश्रधातुओं में 'सी एम 247 एल सी' को अधिक उपयुक्त पाया क्योंकि इसमें कास्टिंग विधि द्वारा पुर्जों के निर्माण के अति उत्तम गुण पाये गये। 1978 में विकसित इस मिश्रधातु का निर्माण अमरीकी कंपनी मैसर्स कैनन मस्कीगन, मिशीगन द्वारा किया जाता है। इस मिश्रधातु में अवांछित प्रावस्थाओं – जैसे सिगमा, म्यू व लवे - के पनपने की संभावना भी नहीं होती है। यद्यपि इस मिश्रधातु में दूसरी ढ़ाली हुई मिश्र धातुओं, जैसे 'आई एन 100' 'एम ए आर-एम 247' की तुलना में कार्बन की मात्रा बहुत कम होती है पर बोरॉन तथा जरकोनियम की उपस्थिति इसकी कण-सीमाओं (ग्रेन बाउन्ड्रीज) को अधिक प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करती है। 1.4 प्रतिशत हैफ़नियम की उपस्थिति इस अधिमिश्रधातु के गुणों में और भी अधिक सुधार करती है ; जैसे कि इसके गलनांक घटने से कास्टिंग गुणों में वृद्धि, कार्बाइड बाह्य-संरचना (मोर्फोलॉजी) के परिशोधित होने से प्रतन्यता में सुधार व प्रमुख शक्तिदायक (r') प्रावस्था की उच्च-ताप-सहन क्षमता में वृद्धि। इस मिश्रधातु की रासायनिक संरचना तालिका (2) में दी गयी है। गैसकण अशुद्धियाँ तथा दूसरे हानिकारक तत्वों का, विशेष रासायनिक नियंत्रण से बनी इस अधिमिश्रधातु में सर्वथा अभाव होता है, अतः इस मिश्रधातु का प्रयोग सूक्ष्म-कणीय इन्टीगरल कास्टिंग में किया जाता है। इस मिश्रधातु के विकास के साथ ही वायु-इंजन निर्माताओं की उच्च गुणों वाली मिश्रधातु की माँग भी बहुत सीमा तक पूरी हो गयी है।

तालिका - 2 : मिश्रधातु सी. एम. 247 एल सी की रासानियक संरचना

धातु	भार प्रतिशत (न्यूनतम)	भार प्रतिशत (अधिकतम)
कार्बन	0.06	0.08
क्रोमियम	8.0	8.5
मोलीबडेनम	0.4	0.6
टैन्टेलम	3.1	3.3
टिटेनियम	0.6	0.9
टंगस्टन	9.3	9.7
एल्युमिनियम	5.4	5.7
बोरोन	0.01	0.02
ज़रकोनियम	0.007	0.02
कोबाल्ट	9.0	9.5
हैफनियम	1.4	1.6
सिलीकॉन	--	0.03
गन्धक	--	0.001
लोहा	--	0.15
ताँबा	--	0.005
मैंगनीज	--	0.01
फॉस्फोरस	--	0.005
वैनेडियम	--	0.1
निओबियम	--	0.1

मिश्रधातु का निर्वात गलन :

अधिमिश्रधातुओं को सामान्यत: निर्वात प्ररोचन गलन (इंडकेशन मेल्टिंग) भट्टी में गलाया जाता है जिससे कि कार्बन, क्रोमियम, टाइटेनियम, एल्यूमिनियम, हैफ़नियम जैसे सक्रिय तत्वों का क्षरण न हो सके व साथ ही अधिमिश्रधातु में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन जैसी गैसीय अशुद्धियों के समावेश को रोका जा सके । सुनियंत्रित निर्वात-स्तर में पिघलाई गयी मिश्रधातु में सभी समरूपी विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं जो अधिमिश्रधातु के कल-पुर्जों के निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक हैं । प्रक्रिया के उचित संचालन हेतु इस भट्टी में कुछ परिवर्तन भी किये गये, जैसे कि द्रावण कक्ष में पिघलित धातु की धारा को संरेखित करने के लिए एक कुप्पीनुमा आधारणी की

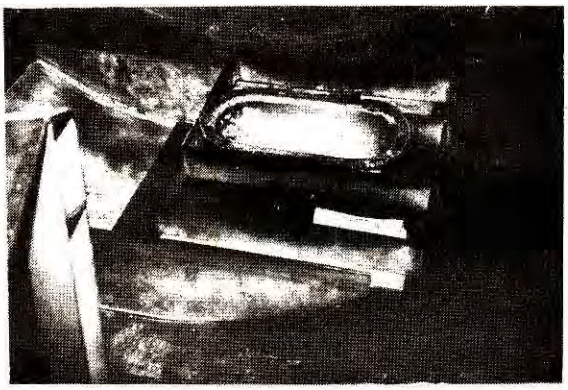

चित्र-2 : भट्टी के द्रावण कक्ष में कुप्पीनुमा आधारणी की व्यवस्था

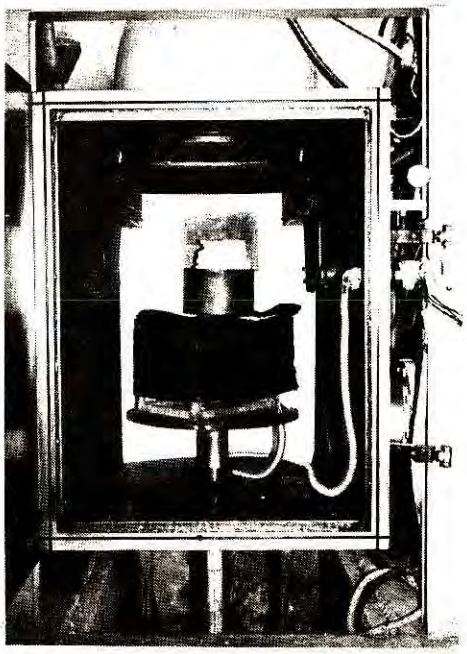

चित्र-3 : संच्च कक्ष में साँचे के घुमाने का विशेष तन्त्र

व्यवस्था (चित्र-2) व संच्च कक्ष (मोल्ड चैंबर) में गलित धातु की ठोसीकरण प्रक्रिया की अवधि में साँचे को घुमाने के लिए एक विशेष व्यवस्था (चित्र-3) ।

कास्टिंग प्रक्रिया का अनुकूलतम निर्धारण :

प्रक्रिया की समरूपता बनाये रखने तथा ऐच्छिक

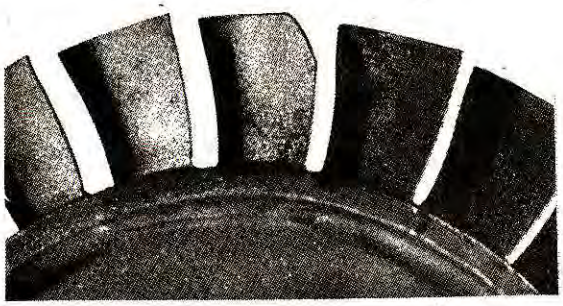

चित्र-4 : रोटर के अपूर्ण फलक

चित्र-5 : रोटर के नाभिकीय भाग में सिकुड़न कैविटी

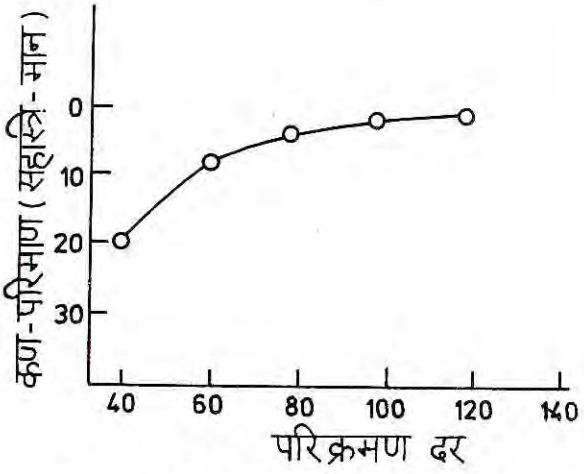

चित्र-6: साँचे को घुमाने की गति व कण परिमाण का सम्बन्ध

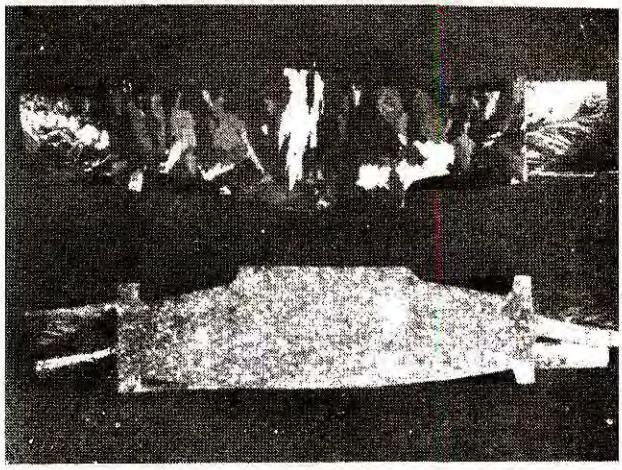

चित्र- 7 : साँचे को उचित गति पर घुमाने के फलस्वरूप हुई सूक्ष्मकणीय संरचना

गुणों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित पैरामीटरों का अनुकूलतम निर्धारण किया गया;

(1) साँचे को प्रारंभ में गर्म करने का तापमान,

(2) पिघली धातु को साँचे में ढालने के समय का तापक्रम तथा ढलाई की गति,

(3) साँचे से तापक्षय को रोकने के लिए उपयुक्त अप्रवेश्य, तथा (4) साँचे को घुमाने की गति ।

इन प्रक्रियाओं पर पूर्ण नियंत्रण तथा संगठन होने पर ही बाह्य व भीतरी दोषों से रहित रोटरों का निर्माण संभव है। साँचे के तापक्रम में कमी या पिघली धातु का तापक्रम कम होने पर फलकों के विभिन्न भागों में (विशेषकर पतले भागों में) पिघली धातु ठीक से नहीं पहुँच पाती है जैसा कि चित्र-4 में दिखाया गया है। साँचे में ताप क्षय के कारण व अप्रवेश्य में अधिकता या कमी से कास्टिंग में सिकुड़न कैविटी अधिक होने से रोटर में दोष आ सकता है जैसा कि चित्र-5 में दर्शाया गया है। नाभिकीय क्षेत्र में कणों का ऐच्छिक आकार प्राप्त करने के लिये साँचे को घुमाने की गति पर भी कई प्रयोग किये गए। उसे आगे और पीछ दोनों ओर घुमा कर देखने के

(शेष पृष्ठ 42 पर देखें)

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1994) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

खनिज तेल उत्पादन में सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न संक्षारण की समस्या

डॉ. अतुल कुमार सामन्त,
वरिष्ठ रसायनज्ञ,
अभियांत्रिक एवं समुद्र प्रौद्योगिक संस्थान,
तेल एवं प्राकृतिक गैस कारपोरेशन लिमिटेड,
पनवेल - 410 221

पिछले कुछ वर्षों में, अपतट तेल क्षेत्रों की पाइप लाइनों से खनिज तेल एवं गैस रिसाव की कई घटनायें हुई हैं। इन पाइप लाइनों की विस्तृत जाँच से सूक्ष्म जीवाणुओं मुख्यतः बैक्टीरिया द्वारा प्रेरित संक्षारण का पता चला। प्रस्तुत लेख में तेल क्षेत्र में बैक्टीरिया द्वारा प्रेरित संक्षारण के कारण, प्रभाव तथा नियंत्रण की व्यख्या की गई है।

संक्षारण के कारण धातुओं तथा मिश्रधातुओं का क्षय एक महत्वपूर्ण अभियांत्रिकी समस्या है। संक्षारण एक विद्युत रसायनिक क्रिया है, जिसके कारण धातु या मिश्रधातु अपने आयनिक रूप में संक्षारित होते हैं। इस रासायनिक प्रक्रिया के तहत एनोड व कैथोड बनते हैं। एनोड वह भाग है, जहां पर संक्षारण होता है। संक्षारण की सामान्य रासायनिक क्रिया को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है –

एनोड $FeS \rightleftharpoons Fe^{++}+2e^{-}$ (आक्सीकरण)

कैथोड $2H^{+} + 2e^{-} \longrightarrow H_2$ (अपचयन)

आक्सीजन की उपस्थिति में कैथोडिक क्रिया :

$$O_2 + 4H^{+} + 4e^{-} \xrightarrow[\text{विलयन}]{\text{अम्लीय}} 2H_2O \text{ (अपचयन)}$$

$$O_2 + 4H^{+} + 4e^{-} \xrightarrow[\text{क्षारीय विलयन}]{\text{उदासीन या}} 4OH^{-} \text{ (अपचयन)}$$

खनिज तेल एवं गैस उत्पादन एवं परिवहन से सम्बन्धित विभिन्न चरणों में उपयुक्त यंत्र, केसिंग पाइप, पाइप लाइन, सेपरेटर इत्यादि में विभिन्न प्रकार की धातुओं तथा मिश्रधातुओं का प्रयोग होता है।

अन्य देशों की तरह बम्बई अपतट के प्लेटफार्म तथा पाइप लाइनों में भी संक्षारण की समस्या हुई है। प्रयोगशाला में किये गये परीक्षणों के आधार पर पाइप लाइनों से बहने वाले खनिज तेल के साथ सम्मिलित जल में विभिन्न प्रकार में बैक्टीरिया की उपस्थिति इसका एक मुख्य कारण है।

बैक्टीरिया प्रेरित संक्षारण से उत्पन्न समस्या :

पिछले कुछ वर्षों में बैक्टीरिया प्रेरित संक्षारण की समस्या भारतवर्ष की तरह अन्य देशों की खनिज तेल एवं गैस उत्पादक संस्थानों में भी पायी गयी है। इस तरह की समस्या मुख्यतः तेल एवं गैस ले जाने वाली पाइप लाइनों में, तेल, गैस एवं जल को अलग करने वाले यंत्रों में तथा तेल एवं गैस टैंकरों मे पायी गयी है। संक्षारण के कारण पाइप लाइनों तथा टैंकरों आदि में छेद होने से तरह-तरह की समस्याऐं पैदा हो जाती हैं। कुछ प्रमुख समस्याऐं निम्नलिखित हैं —

1. संक्षारित पाइप को हटाकर नयी पाइप लाइन प्रतिस्थापन में हुआ व्यय।
2. तेल एवं गैस के रिसाव से हुआ।
3. प्रदूषण की समस्या।
4. आग तथा विस्फोट की सम्भावना।
5. उत्पादन में कमी।
6. संक्षारण पदार्थ के जमाव के कारण तेल बहाव में बाधा।

तेल क्षेत्रों में बैक्टीरिया की उपस्थिति :

सूक्ष्म जीवाणुओं या बैकटीरिया द्वारा प्रेरित संक्षारण साधारण तौर पर उनकी जैविक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न पदार्थों के कारण होता है। ये बैक्टीरिया समूह में रहते हैं तथा एक दूसरे द्वारा उत्पादित पदार्थों पर बहुत कुछ निर्भर करते हैं। इन बैक्टीरियाओं को नष्ट या नियंत्रित करने के लिए इनके शरण स्थल का पता होना तथा विभिन्न कारण, जो इनकी वृद्धि में सहायक हैं, का ज्ञान अत्यावश्यक है। तेल एवं गैस उत्पादन क्षेत्र के विभिन्न संयंत्रों में जहां इनकी उपस्थिति पायी गयी, निम्नलिखित हैं :-

1. पाइप लाइनों में ठहराव वाले स्थान पर।
2. पाइप लाइनों तथा तेल टैंकरों की तली में जमा संक्षारित तथा अन्य पदार्थों के नीचे।
3. फिल्टरों मुख्यतः सैन्ड (बालू) तथा ग्रैवल फिल्टर में।
4. उत्पादक तथा अंतःक्षेपण कूपों के रैट छिद्र में।
5. उत्पादक कूपों में पैकर के पास और वलयाकार जगह के (एन्यूलर स्पेस) पैकर तरल में, वेधन तरल में तथा केसिंग के पीछे।
6. हीटर-ट्रीटर तथा तेल टैंकरों में।

तेल क्षेत्रों के बैक्टीरिया का वर्गीकरण :

साधारण तौर पर अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु जैसे कवक या फफूँदी, शैवाल तथा बैक्टीरिया संक्षारण के लिए उत्तरदायी हैं मगर तेल क्षेत्र में बैक्टीरिया द्वारा प्रेरित संक्षारण ज्यादा पाया गया है। आक्सीजन की मात्रा का बैक्टीरिया की क्रिया से गहन सम्बन्ध है। इसी कारण आक्सीजन की उपस्थिति या अनुपस्थिति के अनुसार बैक्टीरिया को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है; (अ) आक्सीजन की उपस्थिति में सक्रिय बैक्टीरिया या वातापेक्षी बैक्टीरिया, तथा (ब) आक्सीजन की अनुपस्थित में सक्रिय बैक्टीरिया या वातनिरपेक्षी बैक्टीरिया।

मगर तेल क्षेत्र में सक्रिय बैक्टीरिया को निम्नलिखित चार मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है –

1. सल्फेट अवकारक (रिड्यूसिंग) बैक्टीरिया
2. अम्ल उत्पादक बैक्टीरिया
3. लौह आक्सीकारक बैक्टीरिया
4. काई (स्लाइम) उत्पादक बैक्टीरिया

सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया :

तेल क्षेत्रों में बहुतायत में पाये जाने वाले ये बैक्टीरिया एस आर बी के नाम से ज्यादा प्रचलित हैं तथा आक्सीजन की अनुपस्थिति में उपापचयी क्रिया करते हैं। इनकी ताप अवरोधक क्षमता 80^0C तक रहती है और ये पी एच 5.5 से 8.5 के मध्य अधिक सक्रिय रहते हैं। ये बैक्टीरिया मृदा, समुद्र जल तथा मीठे जल स्रोतों में पाये जाते हैं। सल्फेट आयन को अवकरित कर ये हाइड्रोजन सल्फाइड गैस उत्पन्न करते हैं जो धातु के संक्षारण का कारण होती है। डीसल्फोवाइब्रो, डीसल्फोमोनास तथा डीसल्फोटोमैकुलम एस आर बी की कुछ सामान्य जातियाँ हैं।

अम्ल उत्पादक बैक्टीरिया :

इस वर्ग में वे बैक्टीरिया आते हैं जो उपापचयी क्रिया द्वारा अकार्बनिक तथा कार्बनिक अम्ल बनाते हैं। आक्सीजन की उपस्थिति तथा अनुस्थिति, दोनों स्थिति में अम्ल पैदा करने वाली बैक्टीरिया की जातियां तेल क्षेत्रों में पायी गयी हैं। क्लासट्रीडियम एसीटीकम नामक बैक्टीरिया पाइप लाइन में आक्सीजन की अनुपस्थिति में एसिटिक अम्ल उत्पन्न कर संक्षारण के लिए उत्तरदायी पाया गया। इसी प्रकार मृदा में पाया जाने वाला सल्फर आक्सीडायजिंग बैक्टीरिया जैसे थायोबैसीलस थायो-आक्सीडन्स आक्सीजन की उपस्थिति में गंधक का अम्ल पैदा कर धातुओं के संक्षारण में सहभागी होता है।

लौह आक्सीकारक बैक्टीरिया :

गैलिचोनेला, स्फेरोटाइलस, क्रेनोथ्रिक्स आदि तेल क्षेत्र में पाये जाने वाले बैक्टीरिया फेरस आयन (Fe^{++}) को फेरिक आयन (Fe^{+++}) में बदल देते हैं। फेरिक आयन हाइड्राक्साइड आयन से क्रिया कर अघुलनशील फेरिक हाइड्राक्साइड बनाता है। इस फेरिक हाइड्राक्साइड की तह धातु सतह पर जमा हो जाती है। इस तह के नीचे आक्सीजन की मात्रा निकटवर्ती धातु सतह (जहाँ पर

फेरिक हाइड्राक्साइड की तह नही होती है) की तुलना में अत्यन्त कम होने के कारण आक्सीजन सान्द्रता कोशिका का निर्माण करती है। इस वजह से संक्षारण गति फेरिक हाइड्राक्साइड तह के नीचे तीव्र हो जाती है और अन्त में आक्सीजन की न्यूनतम मात्रा के कारण वह स्थल वातनिरपेक्षी बैक्टीरिया का शरण स्थल बन जाता है। इस तरह के नीचे वातनिरपेक्षी बैक्टीरिया अम्ल तथा हाइड्रोजन सल्फाइड गैस उत्पन्न कर संक्षारण गति को तीव्र करते हैं और धातु सतह पर अन्ततः छेद हो जाता है। अघुलनशील फेरिक हाइड्राक्साइड तेल कूप में जाकर शैलसमूह के छिद्रों को बंद कर तेल उत्पादन में व्यवधान डालता है।

काई उत्पादक बैक्टीरिया :

काई उत्पन्न करने वाले बैक्टीरिया अधिकतर आक्सीजन की उपस्थिति में सक्रिय रहते हैं तथा काई या स्लाइम पदार्थ उत्पन्न करते हैं। काई के नीचे सतह पर आक्सीजन की अनुस्थिति में वातनिरपेक्षी बैक्टीरिया सक्रिय हो जाते हैं। काई के कारण आक्सीजन सान्द्रता कोशिकायें भी बन जाती हैं। इसी प्रकार तेल कूपों में काई पैदा होने से शैल समूह के छिद्र बंद हो जाते हैं तथा उत्पादन में बाधा पड़ती है।

बैक्टीरिया प्रेरित संक्षारण :

बैक्टीरिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं जो संक्षारण के लिए उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार का वातावरण निम्नलिखित क्रियाओं के सम्मिलित प्रयास से या किसी एक क्रिया के द्वारा उत्पन्न होता है –

1) ऐनोडिक तथा कैथोडिक क्रियाओं की गति पर प्रत्यक्ष प्रभाव।
2) धातु सतह पर बनी रक्षात्मक फिल्म पर उपापचयी क्रियाओं द्वारा प्रभाव।
3) संक्षारित वातावरण का निर्माण।
4) संख्या में बढोत्तरी कर सान्द्रता कोशिकाओं का निर्माण और द्रव्य (खनिज तेल) के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करना।

सल्फेट अवकारक बैक्टीरिया द्वारा होने वाली संक्षारण प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है :

$$4Fe + SO_4^{-} + 4H_2O \xrightarrow[\text{उपस्थिति में}]{\text{एस आर बी की}} 3Fe(OH)_2 + FeS + 2OH^-$$

यह प्रतिक्रिया आक्सीजन की अनुपस्थिति में होती है तथा इस प्रक्रिया को चित्र -1 में दर्शाया गया है।

जैविक फिल्म का महत्व :

बैक्टीरिया प्रेरित संक्षारण में जैविक फिल्म का अत्यधिक महत्व है। बैक्टीरिया को नष्ट करने तथा उसकी बढोत्तरी को रोकने के लिए प्रयुक्त रासायनिक पदार्थ बायोसाइड जैविक फिल्म के कारण पाइप लाइन में अप्रभावी पाया गया है। अतः पाइप लाइन में बायोसाइड डालने से पहले पाइप लाइन को पिंग यंत्र द्वारा साफ कर जैविक फिल्म को नष्ट कर देते हैं। बैक्टीरिया विभिन्न उपापचयी क्रियाओं द्वारा पोलिमर की तरह की विस्फोइलास्टिक तह बनाते हैं। यह तह सूक्ष्म छिद्रयुक्त तथा अवशोषक प्रकृति की होती है और विभिन्न कार्बनिक एवं अचल कोशिकाओं को जो, जल में रहती है, अवशोषित कर जैविक फिल्म का निर्माण करता है। यह जैविक फिल्म सूक्ष्म जीवाणुओं तथा बैक्टीरिया को संरक्षण प्रदान करती है। इस फिल्म के नीचे बैक्टीरिया विभिन्न क्रियाओं द्वारा संक्षारक वातावरण का निर्माण कर धातु का संक्षारण करते है। चित्र-2 में जैविक फिल्म के नीचे की धातु सतह दिखाई दे रही है इस पर बैक्टीरिया प्रेरित संक्षारण के कारण गड्ढा बन गया है।

सूक्ष्म जीवाणुओं का नियंत्रण :

तेल एवं गैस उत्पादन क्षेत्र में सूक्ष्म जीवाणुओं मुख्यता बैक्टीरिया के नियंत्रण के लिए रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है। इन पदार्थों को बायोसाइड कहते हैं। बायोसाइड के उपयोग की सफलता इसकी कार्यक्षमता के आधार पर होती है। तरल क्लोरीन सबसे सस्ता बायोसाइड है तथा इसका तनु विलयन (0.5-1.0 पी पी एम) बैक्टीरिया मारने के लिए उपयुक्त किया जाता है। मगर इसकी सान्द्रता विलयन में अधिक होने पर यह धातु के संक्षारण का कारक बन जाता है। इसके

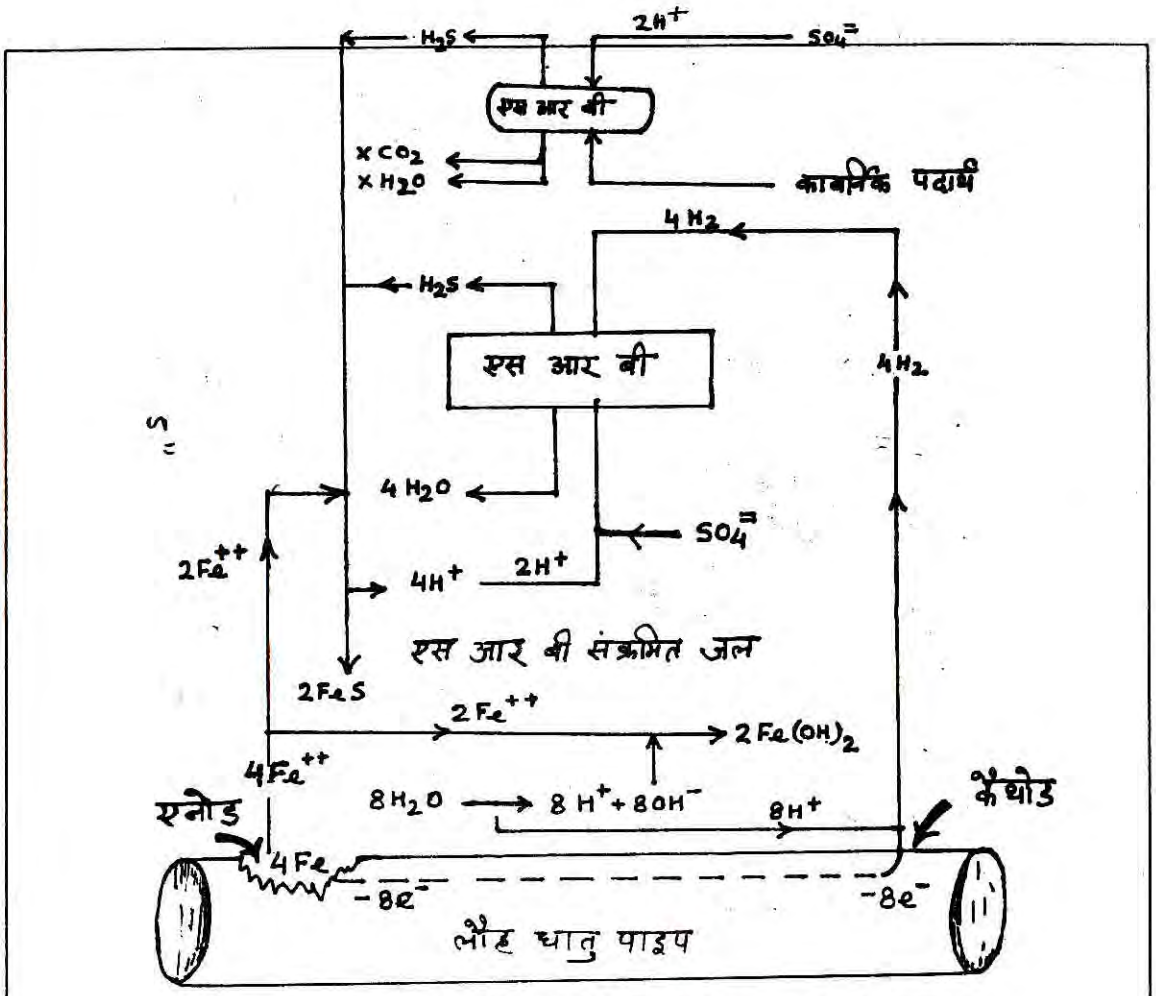

चित्र - 1 : सल्फेट रिड्यूसिंग बैक्टीरिया प्रेरित संक्षारण की यंत्र रचना

विपरीत कार्बनिक रसायन जैसे एलडिहाइडस, क्वार्टरनरी अमोनियम यौगिक, आइसोथायाजोलोन्स, आक्साजोलिडाइन्स इत्यादि अधिक प्रभावी बायोसाइड पाये गये हैं। मगर विषाक्त होने के कारण इनके प्रयोग में काफी सावधानी रखनी पड़ती है।

बायोसाइड की प्रकृति, सान्द्रता और उपयोग की विधि बहुत कुछ संयन्त्र की संरचना पर निर्भर करती है। तेल एवं ग़ैस पाइप लाइनों के अन्दर द्रव के ठहराव या जमा होने वाले क्षेत्र में मुख्यतः बैक्टीरिया की उपस्थिति पायी गयी है। ऐसे स्थान से एकत्रित जल, संक्षारण या दूसरे अन्य पदार्थों को पूर्ण रूप से निकाल कर ही बायोसाइड का प्रयोग करना चाहिए। इस कार्य के लिए एक विशिष्ट यंत्र, जिसे पिग कहते हैं, का प्रयोग किया जाता है। पिग यंत्र कई प्रकार के होते हैं।

बायोसाइड पम्प करने से पहले पाइप लाइन को काँटे-युक्त पोली पिग द्वारा साफ करते हैं। यह यंत्र पाइप लाइन के अंदर तेल या गैस के बहाव के दबाव से आगे बढ़ता है और अंदर पाइप सतह पर जमा किसी भी प्रकार के पदार्थ, बैक्टीरिया कॉलोनी, मोम या संक्षारण पदार्थ को काँटे युक्त तेज धातु प्लेट द्वारा खुरच कर अलग कर देता है। ये पदार्थ पिग के साथ पाइप लाइन के बाहर आ जाते हैं। इस पिग के पीछे सान्द्र बायोसाइड का

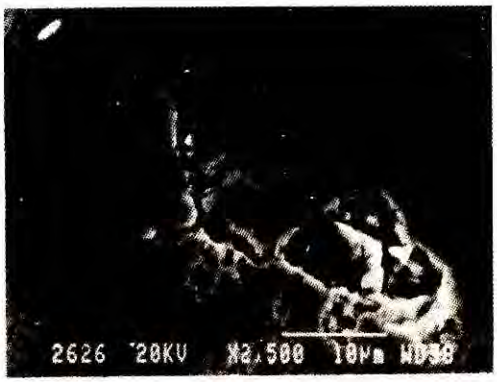

चित्र - 2 : स्कैनिंग इलेकट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा लिया गया चित्र । जैविक फिल्म के नीचे धातु सतह पर गढ़ा (पिट) स्पष्ट दिख रहा है ।

विलयन पम्प करते हैं। बायोसाइड विलयन को एक स्तम्भ के रूप में पाइप के अन्दर बनाये रखने के लिए एक सीलर पिग को इसके पीछे पाइप के अंदर पम्प करते हैं । बायोसाइड विलयन के एक स्तम्भ के रूप में बने रहने से पाइप के अंदर की पूरी सतह इसके सम्पर्क में आती है तथा जहाँ भी बैक्टीरिया कॉलोनी होती है, वह नष्ट हो जाती है । इस विधि में बैक्टीरिया बायोसाइड के सान्द्र विलयन के सीधे सम्पर्क में आते हैं अत: इसे आघात उपचार विधि कहते हैं। कुछ महत्वपूर्ण बायोसाइडों को सारणी-1 में दर्शाया गया है ।

बैक्टीरिया नियंत्रण में पराबैगनी किरणों का उपयोग :

आगार में से खनिज तेल का अधिक दोहन करने के लिए जल अन्त:क्षेपण संवर्धित तेल प्रत्यादान विधि का उपयोग किया जाता है। इस विधि के लिए इस्तेमाल में लाये जाने वाले जल को जीवाणुओं से मुक्त करना अतिआवश्यक है क्योंकि ये आगार में पहुँचकर अनेक समस्याओं को जन्म देते हैं। इसके लिए बायोसाइड का उपयोग खर्चीला साबित हुआ है । अत: जल अन्तक्षेपण प्लेटफार्म पर आजकल पराबैंगनी विधि का उपयोग

सारिणी - 1 :

बैक्टीरिया नियंत्रण के लिए प्रयुक्त प्रमुख बायोसाइड्

बायोसाइड का नाम	उपयोग की मात्रा सांद्रता (पी पी एम)
एल्डिहाइड (अ) ऐक्रोलिन (ब) ग्लूटरेल्डिहाइड	5-80
आक्साजोलिडाइन्स	60-250
ब्रोमीन नाइट्रोजन यौगिक (अ) 2 -ब्रामो-2-नाइट्रोप्रोपेन 1, 3 डाइओल (ब) 2-हाईड्राक्सी-एथिल - 2, 3 डाइब्रोमोप्रोपीआयोनेट	8-30
आइसोथायाजोलोन्स (अ) 1,2 -बेंन्जआइसोथायाजोलिन -3- ओन (बी आई टी) (ब) 5 - क्लोरो - 2- मिथाइल - 4 आइसोथायाजोलिन - 3- ओन और 2-मिथाइल-4 - आइसोथाया-जोलिन- 3- ओन	1-10 1
क्वार्टरनरी अमोनियम यौगिक	25-100
थायोसाइनेटस	आवश्यकतानुसार
डाइक्लोरोफिन	आवश्यकतानुसार
2 - हाइड्रोक्सीइथाक्सी मीथेन	आवश्यकतानुसार

बायोसाइड के साथ-साथ बैक्टीरिया नष्ट करने के लिए किया जाता है ।

पराबैंगनी किरणें जल में उपस्थिति प्लैंकटानिक बैक्टीरिया को नष्ट करने में बहुत ही असरदार साबित हुई हैं। मगर पाइप लाइन की दीवारों से चिपके बैक्टीरिया

(शेष पृष्ठ 61 पर देखें)

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1994) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

अतिचालकता

श्याम लाल धीमान
प्रवक्ता भौतिकी,
द्वारा डॉ. भोलासिंह रावत,
राजकीय चिकित्सालय के पीछे,
कोट द्वार, (गढ़वाल) उ. प्र.- 246 149.

आज अतिचालकता शोध के लिए महत्वपूर्ण विषय है। विश्व के वैज्ञानिक इस दिशा में अग्रसर हैं। इस विषय की महत्ता का ज्ञान इस बात से हो जाता है कि यदि अतिचालकता उच्च ताप पर प्राप्त हो जाये तो हम तमाम वैद्युत मशीनों में विद्युत ऊर्जा की बचत कर सकते हैं। विशाल शक्ति के वैद्युत चुम्बक प्राप्त किये जा सकते हैं। कहना न होगा कि इन्हीं चुम्बकों की सहायता से उड़ती रेलगाड़ियों (तीव्रगामी) का अस्तित्व संभव हो पाया है। इतना हो नहीं अंकीय (डिजिटल) परिपथों में विद्युत संचार तीव्र किया जा सकता है। अतिचालक कम्प्यूटर जो हाल ही की मस्तिष्क उपज है, इसी अतिचालकता गुण पर निर्भर करता है। इसी प्रकार, अन्य अनेक ऐसी महत्वपूर्ण युक्तियां भी इसी अतिचालकता गुण पर निर्भर करती हैं।

अतिचालकता वर्तमान में निम्न तापीय विज्ञान है। किसी पदार्थ का ताप पहले कम किया जाता है और फिर उसके प्रतिरोधक गुण का अध्ययन किया जाता है। ताप कम करते रहने की प्रक्रिया में एक ऐसा ताप प्राप्त हो जाता है, जिस पर पदार्थ की प्रतिरोधकता समाप्त हो जाती है। अतिचालकता के क्षेत्र में प्रथम प्रयोग 1911 में किया गया। परन्तु यह प्रयोग धारा प्रवाह की निरन्तरता और क्रांतिक ताप के विषय में था। इसे अतिचालकता के क्षेत्र में प्रथम चरण कह सकते हैं। इस क्षेत्र हुई कुछ अन्य परिघटनाओं का क्रम इस प्रकार हैं –

1933 — मीसनर प्रभाव की खोज (अतिचालकता प्रावस्था में प्रतिचुम्बकीय गुण)।

1935 – प्रस्ताव रखा गया कि अतिचालकता क्वांटम परिघटना है। इसे बाद में लन्दन प्रस्ताव के नाम से जाना गया।

1950 – फ्रहोलिक द्वारा आइसोटोप प्रभाव की खोज की गयी। इसमें इलेक्ट्रोन–फोनॉन क्रिया की महत्ता प्रतिपादित की गयी।

1953 – अतिचालक ऊर्जा रिक्तता (एनर्जी गैप) का प्रायोगिक प्रमाण मिला।

1957 – बी. सी. एस. सिद्धान्त द्वारा अतिचालकता की व्याख्या की गयी। इस सिद्धांत में इलेक्ट्रॉन युग्म निर्माण की कल्पना की गयी। इसके लिए जे. बार्डीन, एल. कूपर और आर. श्रीफर को भौतिकी में 1972 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

1960 – अतिचालकों में ऊर्जा रिक्तता का प्रमाण मिला। ग्यावर द्वारा सुंरगित प्रभाव (टनल इफैक्ट) की खोज की गयी।

1961 – "अतिचालकों में फ्लक्स का क्वांटमीकरण होता है।" इसकी खोज डीवर, फेयर बैंक, हॉल और नबावर द्वारा की गयी।

1962 – जोसेफसन प्रभाव की खोज की गयी। इसमें "अतिचालक धारा सुरंग-बैरियर से होकर बहती है" की खोज ग्यावर और जोसेफसन द्वारा की गयी, जिसके लिए उन्हें 1973 में भौतिकी

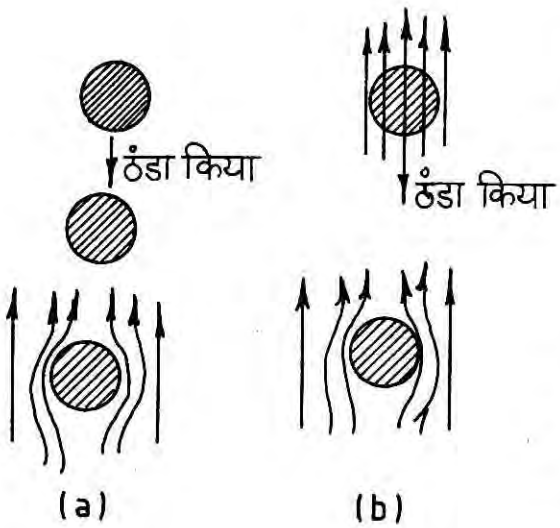

चित्र-1 : अतिचालक को ठंडा करके चुंबकीय क्षेत्र आरोपित किया गया (a) तथा अतिचालक पर पूर्व में चुं. क्षे. आरोपित कर फिर ठंडा किया गया ।

के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

1986 – बेडनोर्ज तथा मुलर द्वारा उच्च ताप अतिचालकता की खोज

अतिचालक पदार्थों के भौतिक गुण :

लीडन विश्वविद्यालय के प्रो. कैमरलिंग ओनेस ने सर्वप्रथम 1908 में द्रवित हीलियम को प्राप्त किया, जिसका ताप 4.2^0 से 1.2^0 केल्विन तक रहा था । ओनेस ने इतने कम तापों पर विभिन्न धातुओं की प्रतिरोधकता का अध्ययन किया । इस अध्ययन में पाया गया कि जहां प्लेटिनम की प्रतिरोधकता कम ताप पर घटती जाती है, वहीं पारे की प्रतिरोधकता 4.2^0 केल्विन पर एकदम शून्य हो जाती है । इस ताप को जिस पर यह प्रतिरोधकता शून्य हो जाती है, क्रान्तिक ताप कहा जाता है । इस ताप के ऊपर प्रतिरोधकता सामान्य रूप से बढ़ती है । प्लेटिनम में अशुद्धियों के कारण प्रतिरोधकता काफी कम ताप पर भी शून्य नहीं हो पाती है । इसके कुछ वर्षों पश्चात लीडन विश्वविद्यालय के ही मीसनर और ऑक्सनफील्ड ने पाया कि यदि किसी अतिचालक पदार्थ को बाह्य चुम्बकीय क्षेत्र में रखा जाये तो पदार्थ से गुजरने वाला चुम्बकीय फ्लक्स शून्य हो जाता है यानि कि तीव्र प्रतिचुम्बकीय बन जाता है (चित्र-1) । अब यदि अतिचालक पदार्थ को चुम्बकीय क्षेत्र से हटाकर और ठंडा किया जाये तो उसमें प्रेरित धारा प्रवाहित होने लगती है । यह धारा केवल क्रान्तिक ताप से कम ताप पर ही प्राप्त होती है जो महीनों तक निरन्तर बहती रहती है और परिमाण में कोई प्रत्यक्ष परिवर्तन भी परिलक्षित नहीं हो पाता है । इस बात का पता अमेरिका के एस. कॉलिन ने लगाया था ।

धातुओं में अतिचालकता का विचारोतेजक गुण खोज लिए जाने के बाद, इस गुण की व्याख्या करने के प्रयास शुरु हो गये । इस परिप्रेक्ष्य में जे. बार्डीन, एल. एन. कूपर और जे. आर. श्रीफर ने 1957 में सार्थक प्रयास किया। ये वैज्ञानिक संयुक्त राज्य अमेरिका में एम. आई. टी. में कार्यरत थे । उन्होंने बताया कि धातुओं की अतिचालकता इलेक्ट्रॉन युग्मों में आकर्षण क्रिया के कारण होती है । यह आकर्षण संक्रिया (इन्टरएक्शन) सामान्य ताप पर अत्यन्त क्षीण होती है । परन्तु अति निम्न ताप पर यह प्रभावी हो जाती है । इस प्रकार, निम्न तापों पर सापेक्षतया यह प्रबल होती है । इसका कारण यह होता है कि कम ताप पर युग्मों में इलेक्ट्रॉनों के आकर्षण के कारण ऊर्जा, ऊष्मीय तरंगों की ऊर्जा के तुल्य अथवा उससे अधिक हो जाती है । यह सिद्धान्त धातुओं में अतिचालकता गुण की व्याख्या करने में इतना सफल रहा कि इसे "अतिचालकता का बी. सी. एस. सिद्धांत" के नाम से जाना जाता है । हांलाकि इस सिद्धान्त से अतिचालकों के अनेक गुणों की व्याख्या हो जाती है, फिर भी यह सिद्धान्त समग्र रुप से व्याख्या करने में सफल नहीं रहा । चूंकि क्रिस्टलों में संरचनात्मक दोष भी होते हैं, अत: सिद्धान्त में आवश्यक संसोधन किये जाने चाहिये अन्यथा परिणाम वास्तविकता से बहुत परे होंगे । प्रयोगों से यह आश्चर्यजनक तथ्य प्रकाश में आया कि सामान्य ताप पर तांबा, सोना. चाँदी आदि सुचालक कही जाने वाली धातुएं निम्न ताप पर अतिचालक नहीं बन पाती हैं । क्रिस्टलों में अशुद्धि के कारण ही ऐसा होता है । सामान्यत: धातुओं का ताप के गिरने के साथ उनका प्रतिरोध भी गिरता जाना चाहिये । प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ कि कुछ धातुओं का प्रतिरोध एक विशेष ताप के नीचे

तालिका-1 कुछ पदार्थों के अतिचालकता संक्रमण ताप

पदार्थ	संक्रमण ताप (^{0}K)
Hg	4.2
La	6.0
Nb	9.5
NbN	16
Nb_3Ge	23.2
$Nd_{1.85}Ce_{0.15}CuO_4$	30
$Ba_{0.7}K_{0.3}BiO_3$	35
$TlSrLaCuO_5$	40
$YBa_2Cu_3O_7$	90
$Bi_2(CaSr)_4Cu_3O_{10}$	110
$Tl_2Ca_2Ba_2Cu_3O_{10}$	125

ताप गिरने के साथ नहीं गिरता । दस के लगभग ऐसी धातुएं भी पायी गयीं है जिनका व्यवहार असामान्य होता है । परमशून्य के आसपास ये धातुएं अपना प्रतिरोध पूर्णतया खो देती हैं । इसके अतिरिक्त मिश्रधातुओं में भी अतिचालकता का गुण परिलक्षित होता है । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि दो या अधिक तत्वों से बनी मिश्रधातु तो अतिचालक होती है जबकि उसके इन घटकों में कोई भी अतिचालक नहीं होता । उदाहरण के लिए कॉपर सल्फाइड अतिचालक होता है जबकि इसके घटकों कॉपर और सल्फर में कोई भी अतिचालक नहीं होता । नियोबियम नाइट्राइड 16^0 केल्विन पर भी अतिचालक गुण रखता है । वह ताप जिस पर कोई पदार्थ सामान्य से अतिचालक प्रावस्था में पहुंचता है, संक्रमण ताप कहलाता है । कुछ पदार्थों के संक्रमण ताप तालिका -1 में दिये गये हैं ।

जब किसी अतिचालक पदार्थ की प्लेट के तल में उसकी किसी भुजा के अनुदिश चुम्बकीय क्षेत्र लगाया जाता है तो अतिचालक के अन्दर चुम्बकीय क्षेत्र शून्य

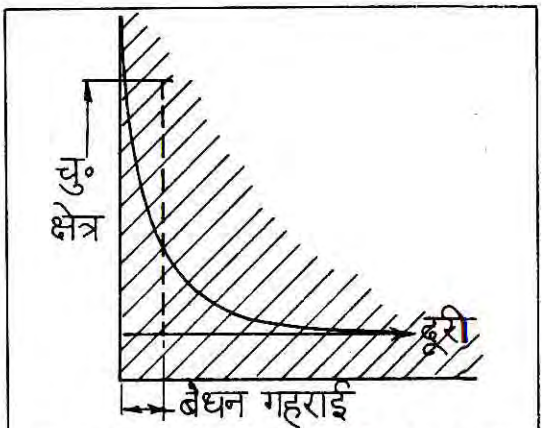

चित्र-2 : अतिचालक में चुं. क्षेत्र का दूरी के साथ आलेख

होता है । परन्तु यदि हम प्लेट की भुजा के समीप किसी लूप पर एम्पियर सिद्धान्त लागू करें तो पायेंगे कि लूप के तल के लम्बरूप एक धारा अवश्य प्रवाहित होती है । यही धारा अतिचालक के अन्दर उत्पन्न चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा बाह्य चुम्बकीय क्षेत्र को निरस्त करने के लिए उत्तरदायी होती है । इसी प्रकार, जब हम किसी अतिचालक गोले को चुम्बकीय क्षेत्र में लाते हैं तो उसकी सतह में ऐसी धारायें उत्पन्न होती हैं जो बाह्य चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव को निरस्त कर देती हैं और इस प्रकार गोले के अन्दर चुम्बकीय क्षेत्र शून्य रहता है । चूंकि अति निम्न ताप पर अतिचालकों का प्रतिरोध शून्य हो जाता है, अतः गोले की सतह पर उत्पन्न धारायें बिना किसी ऊष्मीय हानि के निरन्तर वर्षों प्रवाहित होती रह सकती हैं । इन धाराओं को अतिधारा (सुपर करंट) । इस प्रभाव को मीसनर प्रभाव कहा जाता है ।

अब उपरोक्त प्रयोग में लूप के क्षेत्रफल को कम किया जाए तो धारा घनत्व का मान बढ़ता है । परन्तु यह अनन्त नहीं हो सकता क्योंकि लूप का प्रभावी क्षेत्रफल कभी शून्य नहीं हो सकता है । इसका अर्थ हुआ कि अतिचालक के अन्दर प्लेट की सीमा के अन्दर चुम्बकीय क्षेत्र एकदम शून्य नहीं होता है बल्कि यह सीमा के अन्दर घातीय (एक्सपोनेन्टी) रूप से घटता जाता है और अन्त में शून्य हो जाता है । यह गहराई जहाँ तक चुम्बकीय क्षेत्र प्रभावी रहता है अतिचालक की "वेधन

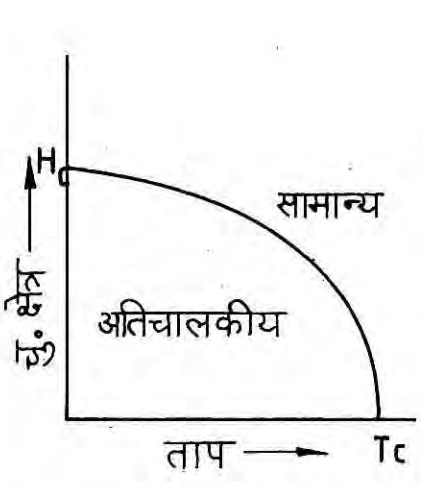

चित्र-3 : क्रान्तिक चुं. क्षे. का ताप के साथ परिवर्तन

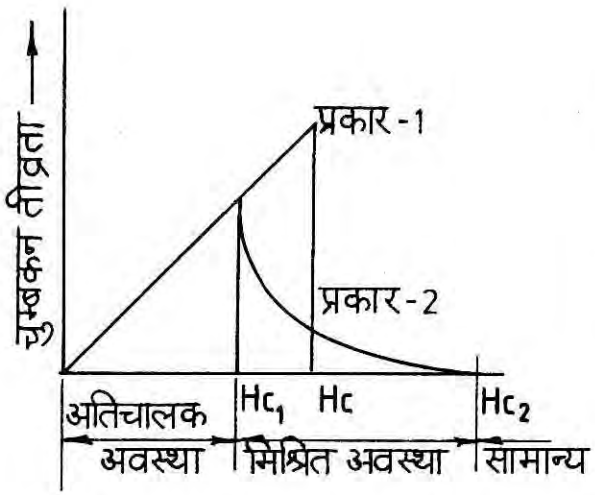

चित्र-4 : प्रकार-1 व प्रकार-2 अतिचालक चुंबकन तीव्रता तथा अवस्थाएं

गहराई" कही जाती है। यह 10^3 से 10^4 एंग्सट्रॉम तक होती है (चित्र- 2)।

कैमरलिंग ओनेस ने पता लगाया था कि किसी अतिचालक को ऐसे चुम्बकीय क्षेत्र में रखने पर जिसका मान क्रान्तिक मान से अधिक हो तो उसमें पुनः विद्युत प्रतिरोध उत्पन्न हो जाता है। ताप वृद्धि के साथ इस चुम्बकीय क्षेत्र का मान कम होने लगता है और क्रान्तिक ताप पर यह शून्य हो जाता है (चित्र -3)।

अतिचालक पदार्थों को दो श्रेणियों में बांटा गया है – प्रकार-1 व प्रकार-2। ये दोनों श्रेणियां उनके चुम्बकीय व्यवहार पर निर्भर करती हैं। चित्र-4 से पता चलता है कि अतिचालक प्रकार-1 में, जो कि शुद्ध धातुएं होती हैं, चुम्बकीय फ्लक्स तब तक प्रवेश नहीं कर पाता है, जब तक कि क्रान्तिक चुम्बकीय क्षेत्र (H_C) न उत्पन्न कर लिया जाये। इस चुम्बकीय क्षेत्र के उत्पन्न होने पर सारा चुम्बकीय फ्लक्स धातु से होकर गुजर जाता है। इसके विपरीत मिश्र धातुओं और यौगिकों में, जिन्हें अतिचालक प्रकार-2 से जाना जाता है, चुम्बकीय फ्लक्स क्रान्तिक चुम्बकीय क्षेत्र H_{C1} से प्रवेश करना शुरु करता है और चुम्बकीय क्षेत्र H_{C2} पर जाकर पूर्णतः पदार्थ में प्रवेश कर पाता है। प्रौद्योगिकी में प्रकार-2 वाले अतिचालक अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं क्योंकि इन पदार्थों के लिए क्रान्तिक ताप, चुम्बकीय क्षेत्र और तद्नुसार धारा भी अधिक होती है। ये तीनों राशियाँ मिश्र धातु बनाने से प्रभावित होती है। ऐसी धातुओं की प्रकृति जटिल होती है और इनके स्थैतिक और गत्यात्मक गुणों में भारी अन्तर आ जाता है।

अतिचालकों का एक दिलचस्प गुण यह भी होता है कि जब दो अतिचालकों के बीच कुचालक महीन पर्त संपर्क में रख दी जाये तो परिपथ पूर्ण होने पर धारा प्रवाहित होने लगती है। साधारण परिपथ में बिना विभवान्तर के धारा का प्रवाहित होना संभव नहीं है। महीन पर्त की मोटाई 10 से 50 एंग्सट्रॉम तक हो सकती है। जोसेफसन ने बिना प्रयोगों के इसकी भविष्यवाणी पहले ही कर दी थी। बाद में प्रयोगों से इसकी पुष्टि हो पायी। इसी कारण इसे जोसेफसन प्रभाव कहते हैं। कुचालक और अतिचालकों के बीच इस संधि को जोसेफसन संधि कहते हैं (चित्र-5)। इसी प्रकार, यदि अतिचालक को छल्ले के रूप में लिया जाए जिसकी दो भुजायें A व B हों तथा छल्ले में CD व EF दो कुचालक

महीन पर्तें हों तो भुजा A में धारा के प्रवाहित होने पर यह छल्ले में दो भागों में विभक्त हो जाती है और B पर आकर पुनः मिल जाती हैं (चित्र-6)। यदि छल्ले के तल के लम्बरूप चुम्बकीय क्षेत्र भी आरोपित किया जाये तो धारा और चुम्बकीय क्षेत्र में खींचा गया ग्राफ चित्र-7 की तरह प्राप्त होता है। प्रयुक्त की गयी इस युक्ति को 'सुपरकंडक्टिंग क्वांटम इन्टरफियरेन्स डिवाइस' (स्क्विड) कहा जाता है। चित्र -7 के ग्राफ से पता चलता है जैसे कि वह एक व्यतिकरण प्रतिचित्र है। चूंकि प्रवाहित धारा, चुम्बकीय क्षेत्र में हुए सूक्ष्म परिवर्तन के प्रति संवेदनशील होती है, अतः इस युक्ति को अति संवेदनशील चुम्बकत्वमापी की तरह प्रयुक्त किया जा सकता है।

अतिचालकता अतितरलता के समान ही एक परिघटना है। जहां अतिचालकता वैद्युत परिघटना है, वहीं अतितरलता यांत्रिक परिघटना है। दोनों ही परिघटनायें निम्नतापीय हैं। अतिचालक पदार्थ में विद्युत क्षेत्र आरोपित करने पर इलेक्ट्रॉनों में त्वरण पैदा नहीं होता और वे स्थिर वेग से गतिमान रहते हैं। उसी प्रकार, अतितरलता में तरल द्रव में जब गुरुत्वीय प्रभाव में कोई वस्तु गिरती है तो वह त्वरित नहीं होती बल्कि स्थिर वेग से गतिमान होकर नीचे गिरती है। इस वेग को चरम वेग कहा जाता है। ऐसा द्रव अस्तित्व में है और वह है - द्रव हीलियम-द्वितीय, जो 2.15^0 केल्विन पर अतितरल अवस्था में पहुँच जाती है। ऐसा समझा जाता है कि न्यूट्रान तारों में पदार्थ अतिचालक और अतितरल दोनों ही रूपों में होता है। यहाँ पदार्थ का घनत्व सामान्य से लगभग 10^{15} गुना अधिक होता है। इसका संक्रमण ताप 10^9 डिग्री केल्विन का होता है।

अतिचालकों के अनुप्रयोग :

चुम्बक-अतिचालकों के आविष्कार के बाद से उनके अनुप्रयोगों पर अनुसंधान कार्य शुरु हो गया था। सर्वप्रथम, इनका उपयोग चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करने में किया गया। आज उच्च ऊर्जा भौतिकी से लेकर चिकित्सा विज्ञान जैसे क्षेत्रों में अतिचालक चुम्बक अहम भूमिका निभा रहे हैं। इन चुम्बकों में लघु, मध्यम व बृहदाकार

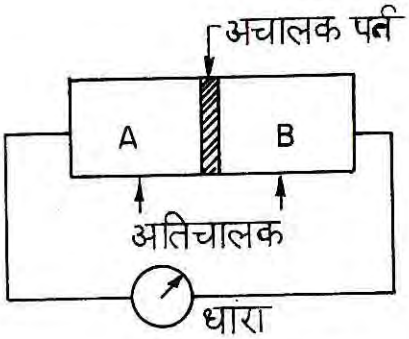

चित्र-5 : जोसेफसन संधि

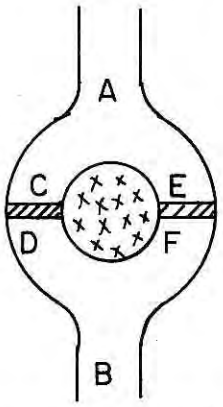

चित्र-6 : अतिचालक भुजाएं A व B, CD व EF अचालक पर्तों के साथ (स्क्विड)

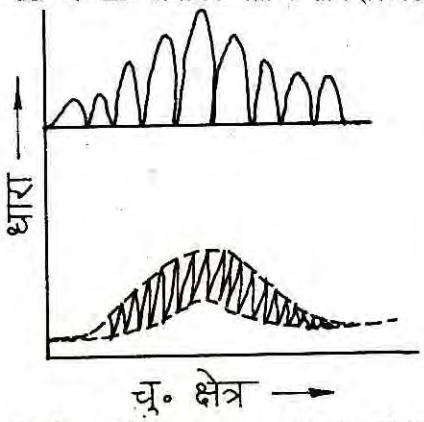

चित्र-7 : स्क्विड में चु. फ्लक्स पर सुपरकरंट की निर्भरता

के चुम्बक क्षीण व तीक्ष्ण चुम्बकीय क्षेत्र वाले सभी प्रकार के चुम्बक सम्मिलित हैं। छोटे अतिचालक चुम्बकों का

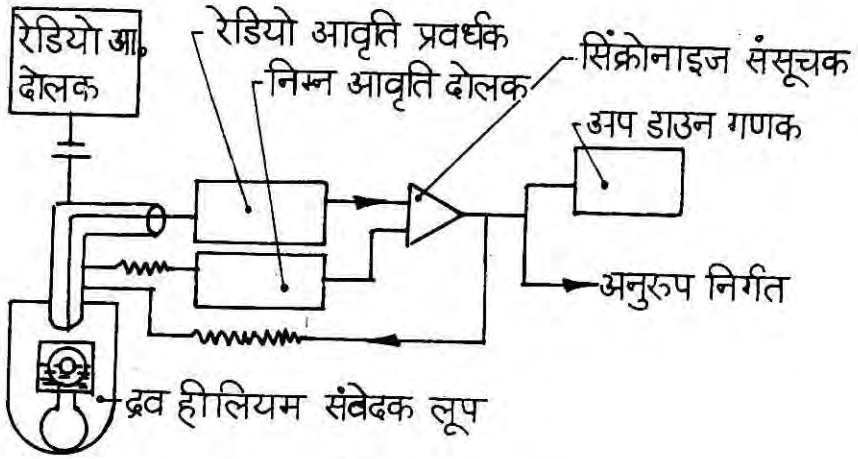

चित्र- 8 : ठोस डिजिटल चुम्बकत्वमापी ।

चुम्बकीय क्षेत्र 10 टैसला तक होता है जबकि इनका व्यास 3 से 6 सेमी. तक होता है । ये प्रयोगशालाओं में प्रयुक्त हो सकते हैं । बड़े व्यास वाले अतिचालक चुम्बकों का व्यास 4.7 मी तथा तीव्रता 3.5 टैसला तक सीमित है । ऐसा एक अतिचालक चुम्बक जिनेवा में सी. ई. आर. एन. में स्थित है । इंटरमैग्नेटिक्स जनरल कम्पनी (संयुक्त राज्य अमेरिका) ने ऐसा अतिचालक चुम्बक तैयार किया है जिसकी तीव्रता 17.5 टैसला और व्यास 3.1 सेमी है। संकर किस्म का अतिचालक चुम्बक 3.2 सेमी. व्यास और 30.1 टैसला तीव्रता का है । यह संयुक्त राज्य अमेरिका (एम. आई. टी.) में स्थित है ।

इन चुम्बकों का उपयोग चिकित्सीय निदान, स्पेक्ट्रममिति, अयस्क विलगीकरण, चुम्बकीय आवरण (मैग्नेटिक शील्डिंग) में किया जाता है। भौतिकी में इनका उपयोग संघट्ट कारक (कॉलाइडर), संलयन संरेखण (फ्यूजन कंफाइनमेंट) तथा उच्च आवृति व्युत्पत्ति में किया जाता है ।

अतिचालक विद्युत मशीन :

ऐसी प्रथम मशीन इंग्लैंड में इंटरनेशनल रिसर्च एंड डेवलेपमेंट कारपोरेशन द्वारा बनायी गयी । 1970 में वहां ऐसी ही एक और मशीन बनायी गयी । 1980 में अतिचालक तारों का उपयोग कर प्रत्यावर्ती धारा जनित्र बनाने का प्रयास किया गया । ऐसे जनित्र में विद्युत ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता । विद्युत ऊर्जा के प्रेषण में भी ऊर्जा हानि अतिचालकों के उपयोग से समाप्त हो जाती है ।

जोसेफसन प्रभाव पर आधारित युक्तियाँ :

निम्न क्षेत्र निम्न धारा अतिचालक अनुप्रयोगों में जोसेफसन प्रभाव अस्तित्व में आया । इसका विवेचन पूर्व में किया जा चुका है । यह प्रभाव दो प्रकार का होता है – स्थिर धारा प्रभाव व प्रत्यावर्ती धारा प्रभाव । स्थिर धारा प्रभाव में अतिचालक संधि पर कोई विभवान्तर नहीं लगाया जाता है और अतिचालकों में धारा बहने लगती है । इसके विपरीत प्रत्यावर्ती धारा प्रभाव में जोसेफसन धारा तब प्रवाहित होती है जब संधि पर प्रत्यावर्ती विद्युतवाहक बल आरोपित किया जाता है । आरोपित विद्युत वाहक बल व धारा में कलान्तर होता है । धारा की आवृति आरोपित विद्युत वाहक बल के समानुपाती होती है । इस आवृति के कारण संधि पर विद्युत चुम्बकीय विकिरण उत्पन्न होता है । इसे जोसेफसन विकिरण कहते हैं । इस प्रभाव को ध्यान में रखते हुए संसूचक, मिक्सर और प्रवर्धक (एम्पलिफायर) जैसी युक्तियाँ बनायी जा चुकी हैं । इन युक्तियों को जोसेफसन युक्तियाँ कहते हैं।

इनमें धारा की आवृति शून्य से 10^{12} हर्ट्ज तक होती है। संसूचकों का उपयोग भूगर्भीय खोजबीन, चिकित्सा विज्ञान आदि में होने की संभावनाएं हैं।

अतिचालक कम्प्यूटर :

चूंकि जोसेफसन प्रभाव में धारा, विद्युत वाहक बल आरोपित करने के बाद तुरन्त ही प्रवाहित होने लगती है, अत: इसका "स्विचिंग टाईम" बहुत कम 10^{-12} सेंकड होता है। यह बात इतनी महत्वपूर्ण है कि यदि किसी कम्प्यूटर में ऐसे स्विचों का उपयोग किया जाये तो उसकी कार्यक्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। इससे समय की काफी बचत हो जाती है। इस प्रकार, अत्यन्त तेज गति से कार्य करने वाले तीव्र संवेगी कम्प्यूटरों के विकास की प्रबल संभावनाएं हैं। अतिचालक कम्प्यूटर की मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं :

(1) जोसेफसन संधि वाली युक्ति अन्य समान युक्तियों के सापेक्ष कम ऊर्जा क्षय करती हैं। अर्धचालक युक्त कम्प्यूटर सामान्यतया 1500 वाट शक्ति क्षय करता है जबकि अतिचालक कम्प्यूटर में यह शक्ति क्षय केवल 750 वाट तक ही सीमित है।

(2) किसी भी इलेक्ट्रॉनिक मशीन में इलेक्ट्रॉनिक द्वार (गेट) मुख्य भूमिका अदा करते हैं। जिस द्वार से विद्युत प्रवाह जितनी क्षिप्र गति से होगा मशीन उतनी ही शीघ्र कार्य करने में सक्षम होगी। अतिचालकों के प्रयोग से यह प्रवाह शीघ्रता से होता है।

(3) अतिचालकों के उपयोग से युक्ति के आकार में कमी आ जाती है। इससे अतिचालक कम्प्यूटर का आकार भी कम हो जाता है।

(4) अतिचालकों के उपयोग से विद्युत स्पन्दें न तो प्रतिबाधित ही होती हैं और न विकृत। युक्ति को समुचित भार (लोड) द्वारा बाधित कर अधिक उपयोगी यानि कि इच्छानुसार उपयोग में लाया जा सकता है।

(5) विभिन्न प्रकार के तार्किक व स्मृति फलन अतिचालक एकीकृत परिपथ (सुपर कंडक्टिंग इंटीग्रेटिड सर्किट) द्वारा संपन्न कराये जा सकते हैं।

अतिचालक सुपरकम्प्यूटर के लाभों को देखते हुए आई. बी. एम. कारपोरेशन (अमेरिका) ऐसा ही कम्प्यूटर निर्माण करने की दिशा में अग्रसर है।

अतिचालक यन्त्र :

अतिचालकों के विकास के साथ अतिचालक इलेक्ट्रॉनिक्स का अस्तित्व भी अब प्रकाश में आ चुका है। जोसेफसन प्रभाव पर आधारित अनेक युक्तियों पर अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं। इस प्रभाव पर आधारित कुछ युक्तियाँ इस प्रकार हैं –

1) अनुरूप नमूना युक्ति
2) तीव्र गणक
3) ए / डी कन्वर्टर
4) डिजिटल फिल्टरिंग यंत्र,
5) मल्टी चैनल स्पेक्ट्रम विश्लेषक,
6) ग्रेविटोमीटर,
7) अतिचालक दिशा सूचक।

उपरोक्त युक्तियों पर अभी अनुसंधान कार्य चल रहा है।

उड़ती रेलगाड़ियाँ :

तीव्र गतिक रेलगाड़ियों के लिए उन्हें हवा में लटकाकर चलाना पड़ता है। उन्हें संभाले रखने के लिए उच्च तीव्रता के विद्युत चुम्बकों की आवश्यकता होती है। ऐसे विद्युत चुम्बक अतिचालक युक्तियों द्वारा ही संभव हो पाते हैं।

ठोस अंकीय चुम्बकत्वमापी :

जोसेफसन प्रभाव पर आधारित इस युक्ति का आरेख्र चित्र-8 में दर्शाया गया है। यह निर्गत पाठ्यांक अंकों में देता है। यह अनुरुप प्रकार (एनालॉग टाईप) का होता है। यह विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम की सभी आवृतियों के लिए समान रुप से कार्य करता है। परन्तु यह 10^{12} हर्ट्ज (सूक्ष्मतरंगों तक के लिए) तक सुचारु रुप से कार्य करता है। इसलिए इस चुम्बकत्वमापी को उपयोग

में लाने से पूर्व इसे रेडियो आवृति से परिरक्षण (शील्डिंग) कर दिया जाता है । यह चुम्बकत्व मापी पार्थिव या अन्तरिक्ष सम्बन्धी शोधों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस चुम्बकत्वमापी को निम्न प्रतिबाधा धारामापी अथवा धारामापी प्रवर्धक की तरह भी प्रयुक्त किया जा सकता है। यही नहीं, इसे शून्य विक्षेपमापी की तरह निम्न तपीय विभवमापन में भी प्रयुक्त किया जा सकता है । इससे अत्यन्त शुद्ध धातुओं की प्रतिरोधकता ज्ञात की जाती है ।

अतिचालकों का उपयोग अतिचालक केबल, मोटर, जनित्र, ट्रांस्फॉर्मर, विद्युत युक्तियों, उच्च ऊर्जा भौतिकी, संलयन प्रविधि, एम. एच. डी., एस. एम. ई. एस, माइक्रोवाट लॉजिक युक्ति, माइक्रोवाट उच्च आवृति युक्ति, तीव्र स्विचिंग आदि युक्तियों में प्रभावी रूप से किया जा सकता है । भारत में उक्त प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत कम कार्य हुआ है । देश में कुछ संस्थायें एवं विश्वविद्यालय जोसेफसन प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान रत हैं। कुछ कार्य उच्चताप अतिचालक पदार्थ तैयार करने की दिशा में भी हो रहा है। हम आशा कर सकते हैं कि निकट भविष्य में ये पदार्थ हमारे दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी सहायक सिद्ध होंगे।

❐❐❐

पृष्ठ - 29 का शेषांश . . .

पश्चात एक अनुकूलतम गति का निर्णय लिया गया । चित्र-6 में विभिन्न परिक्रमण दर द्वारा मिले कण-परिमाण से स्पष्ट है कि लगभग 100 परिक्रमण दर की गति ऐच्छिक कण-परिमाण के लिए उपयुक्त है । ठोसीकरण की प्रक्रिया के दौरान साँचे को घुमाने से ही समरूप व सूक्ष्म कणों का निर्माण संभव है व शाखिकाओं (डेन्ड्राइट्स) की बढ़त पर अंकुश लग जाता है जैसा कि चित्र-7 से स्पष्ट है । इस तकनीक द्वारा निर्मित एक इन्टीगरल रोटर को मुख्य पृष्ठ पर दर्शाया गया है ।

ऊष्म समतलीय दबाव प्रक्रिया :

यद्यपि ठोसीकरण के समय साँचे को उचित गति पर घुमाने से समरूपी व सूक्ष्मकणों की रचना होती है पर ठोसीकरण की प्रक्रिया में बार – बार बाधा पड़ने से, शाखिकाओं के मध्यस्थ स्थानों में सूक्ष्म छिद्र रह जाते हैं। इन छिद्रों की उपस्थिति का रोटर की कार्यक्षमता व दूसरे गुणों जैसे लघु-चक्र-थकान क्षमता पर प्रभाव पड़ता है । इसलिए इन सूक्ष्मछिद्रों को भरना या बन्द करना अति आवश्यक है । इस कार्य के लिए ऊष्म समतलीय दबाव विधि बहुत उपयोगी है । इस विधि में उच्च ताप पर वस्तु के प्रत्येक भाग पर प्रत्येक दिशा से आर्गन गैस का भारी दबाव डाला जाता है । इस विधि में - अनुकूल ताप, अनुकूल दबाव व उचित अवधि - इन तीन पैमानों का निर्धारण करना अति आवश्यक है । इस विधि के समय रोटरों को ऑक्सीकरण से बचाने के लिए इन्हें ऑक्सीकरण निरोधक सामग्री से भली प्रकार पैक करना भी आवश्यक है ।

ताप-प्रक्रिया तथा गुण मूल्यांकन :

अधिमिश्रधातुओं के गुण ताप-प्रक्रिया पर बहुत अधिक निर्भर होते हैं और ऐच्छिक गुणों की प्राप्ति हेतु एक उचित ताप प्रक्रिया अति आवश्यक है । इसलिए कई रोटरों को विभिन्न ताप-प्रक्रियाओं के पश्चात उन्हें काट कर उनसे जाँच प्रदर्शों का निर्माण किया गया और इन प्रदर्शों का विभिन्न गुणों जैसे लघु-चक्र-थकान क्षमता, आतनन बल व क्रीप प्रतिरोधक शक्ति के मूल्यांकन के लिए विभिन्न यंत्रों पर परीक्षण किया गया । इन प्रदर्शों के गुण तालिका-1 में दिये गये मानदंडों से मिलते पाये गये ।

भविष्य के लिए संकेत :

समरूपी व सूक्ष्म कणों की साँचा निर्माण प्रक्रिया असीम संभावनाएँ लिये एक नई तकनीक है । इस विधि द्वारा निर्मित कलपुर्जों के गुणों की चूर्णधातुकर्मीय विधि या तापकुट्टन विधि द्वारा निर्मित कलपुर्जों के गुणों से तुलना की जा सकती है। इसके अतिरिक्त यह नई विधि, आर्थिक दृष्टि व सामग्री उपयोग की दृष्टि से, विशेषकर अधिमिश्रधातु व दूसरी अधिक मूल्यवान धातुओं के बढ़ते हुए उपयोग को देखते हुए; अत्यन्त आकर्षक है ।

मैं अपने संस्थान के निदेशक श्री आचार्युलु को इस लेख को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करने के लिए धन्यवाद देता हूँ ।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख्र प्रतियोगिता (1994) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण प्रदीप्ति द्वारा पदार्थों का विश्लेषण

मदन लाल
नाभिकीय भौतिकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
ट्रॉम्बे, बम्बई - 400 085

इस लेख में एक्स-किरण प्रदीप्ति की आधुनिक विधि-ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण प्रदीप्ति का विवरण तथा उपलब्धियां प्रस्तुत की गयी हैं। पुरानी विधि की अपेक्षा नई विधि की सुविधाओं तथा आधुनिक प्रगतियों का विवरण भी दिया है। इस विधि का उपयोग समस्त विश्व में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में उपयोगी पदार्थों के तत्वों के विश्लेषण के लिए विस्तृत रूप से हो रहा है। हमारी प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों व प्राप्त भौतिक उपलब्धियों का विवरण यहां प्रस्तुत किया गया है।

एक्स-किरण प्रदीप्ति विधि द्वारा सभी प्रकार के पदार्थों में मौजूद तत्वों का विश्लेषण बहुत समय से प्रचलित है। इस विधि द्वारा पदार्थों में मौजूद विभिन्न तत्वों की पहचान, उनके परमाणु से निकली एक्स-किरणों द्वारा किया जाता है जो तत्व के अनुसार भिन्न भिन्न ऊर्जा की होती हैं। इन एक्स-किरणों का उत्पादन फोटान अथवा आवेशित कणों जैसे कि प्रोटान या अल्फा द्वारा K या L कक्षीय इलेक्ट्रॉनों को उत्तेजित करने से संभव होता है। पदार्थ में मौजूद तत्वों के एक्स-किरण स्पेक्ट्रम द्वारा किरणों की ऊर्जा तथा तीव्रता के माप से तत्वों की गुणात्मक मात्रा की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

बहुत समय से एक्स-किरण प्रदीप्ति के प्रयोग अपरिक्षेपक ब्रैग यंत्र तथा शक्तिशाली एक्स-किरण उत्पादक द्वारा किये जाते रहे हैं। लगभग पिछले 25 वर्षों से एक्स-किरण प्रदीप्ति का पृथक्करण एक नई विधि द्वारा किया जा रहा है जिसे ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण प्रदीप्ति के नाम से जाना जाता है। इस विधि में लीथियमयुक्त सिलिकॉन [Si (Li)] अथवा अतिशुद्ध जरमैनियम (HPGe) अर्धचालक संसूचकों को 77^0K के ताप तक ठंडा कर के उपयोग में लाया जाता है। इन संसूचकों की एक्स-किरण पृथक्करण शक्ति इतनी उत्तम है कि आवर्त चार्ट के प्रारंभिक आसपास के तत्वों का पृथक्करण इनके द्वारा संभव है। इसलिए पुरानी विधि में प्रयोग किये गये बड़े बड़े यंत्रों के बिना ही एक्स-किरणों का संसूचक द्वारा पृथक्करण हो सकता है। नई विधि के कई लाभ हैं जो इस प्रकार हैं :

1. पदार्थों में मौजूद तत्वों का विश्लेषण एक साथ संभव होने के कारण बहुत कम समय में ही अधिक नमूनों का विश्लेषण कर सकते हैं।
2. बड़े शक्तिशाली एक्स-किरण उत्पादक के स्थान पर रेडियो आइसोटोप से निकले फोटान द्वारा तत्वों का उतने ही सूक्ष्मता स्तर तक विश्लेषण कर सकते हैं।
3. पदार्थों को बिना क्षति पहुंचाये उनका विश्लेषण किया जा सकता है। इस प्रकार बहुमूल्य पदार्थों के तत्वों की जानकारी नई विधि द्वारा सुविधापूर्वक हो सकती है।

तत्वों को उत्तेजित करने के भिन्न भिन्न साधनों का विवरण :

पदार्थों के तत्वों को उत्तेजित करने के लिए फोटान अथवा आवेशित कणों - प्रोटान या अल्फा का उपयोग किया जाता है। फोटान किरणें रेडियोआइसोटोप या 10-100 वाट ताकत के एक्स-किरण उत्पादक द्वारा प्राप्त की जाती हैं। प्रोटान या अल्फा कणों का उत्पादन त्वरित यंत्र द्वारा किया जाता है जो कि 5.5 MeV ऊर्जा के वान डी ग्राफ से प्राप्त किया जाता है। फोटान द्वारा तत्वों को

उत्तेजित करने के लिए तीन भिन्न-भिन्न शक्ति के आइसोटोपों द्वारा अथवा एक्स-किरण उत्पादक के लक्ष्यों द्वारा तत्वों का अतिसूक्ष्म स्तर तक विश्लेषण कर सकते हैं। कम ऊर्जा के फोटान जो $Z \leq 11$ से प्राप्त होते हैं, का विश्लेषण बहुत कठिन होता है। इसलिए इस विधि को आवर्त तालिका के पहले ग्यारह तत्वों $Z \leq 11$ के विश्लेषण के लिए प्रयोग में नहीं लाया जाता। फोटान की अपेक्षा प्रोटान द्वारा पदार्थों के अतिसूक्ष्म तत्वों को उत्तेजित करना अधिक लाभकारी है। इसका कारण प्रकीर्णन फोटान बैरिलीयम द्वार पार कर संसूचक तक पहुंच कर बहुत अधिक पृष्ठभूमि सिगलन उत्पादन करते हैं जब कि प्रोटान भारी होने के कारण बैरिलीयम द्वार पर रोक दिये जाते हैं। त्वरित द्वारा प्रोटान का उत्पादन फोटान के मुकाबले में बहुत अधिक मात्रा में होता है तथा प्रोटान द्वारा उत्तेजित एक्स-किरणें फोटान के मुकाबले में अधिक होती हैं खास तौर पर आवर्त तालिका के प्रारम्भिक तत्वों की। इसके फलस्वरूप प्रोटान द्वारा तत्वों को उत्तेजित करने की विधि में पदार्थों को 10^{-9}- 10^{-12} ग्राम तत्वों तक का विश्लेषण संभव है। भारत में प्रोटान का उत्पादन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में स्थापित वान डी ग्राफ त्वरित यंत्र द्वारा किया जाता रहा है। इन सब साधनों द्वारा किये गये भिन्न-भिन्न प्रयोगों का विवरण इस लेख में किया गया है।

एक्स-किरण प्रदीप्ति के अत्याधुनिक विकास की उपलब्धियां :

पदार्थों में मौजूद तत्वों का अतिसूक्ष्म स्तर तक विश्लेषण बहुत लाभकारी सिद्ध हो रहा है। इस दिशा में जिन आधुनिक प्रगतियों का प्रयोग हुआ है इनका विवरण इस प्रकार है। संपूर्ण परावर्तक एक्स-किरण प्रदीप्ति विधि के माध्यम से पदार्थों से प्रकीर्णन फोटान को संसूचक की दिशा से दूर करने से संसूचक में पृष्ठभूमि नॉयज उत्पादन बहुत कम होता है। इसी प्रकार सिंक्रोटान किरणों द्वारा भी 10^{-9} - 10^{-12} ग्राम तक विश्लेषण संभव है। फोटान तथा प्रोटान को अब तो पदार्थों के सूक्ष्म लक्ष्य पर माइक्रोन कणों पर केंद्रित कर पदार्थों के सूक्ष्म कणों का अध्ययन किया जा सकता है। पदार्थ के भिन्न-भिन्न भागों के तत्वों का ज्ञान बहुत लाभकारी सिध्द हो रहा है। इन सब नई विधियों द्वारा आवर्त चार्ट के विरल मृदा तत्वों का नैनोग्राम स्तर तक विश्लेषण संभव नहीं था। इस दिशा में सर्वप्रथम हमारी प्रयोगशाला में एक सरल विधि द्वारा विरल मृदा तत्वों का विश्लेषण नैनोग्राम मात्रा में सफल हो सका। इस विधि में Am^{241} रेडियो आइसोटोप द्वारा पैन्सिल आकार के रेडियो आइसोटोप से विरल मृदा तत्वों की K एक्स-किरण प्रदीप्ति का अतिशुद्ध जरमैनियम संसूचक द्वारा संसूचन करने के फलस्वरूप संभव हुआ है।

ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण प्रदीप्ति यंत्र के उपस्कर :

इस यंत्र में संसूचक सिलिकॉन (लीथियम) [Si(Li)] या अतिशुद्ध जरमैनियम (HPGe) अर्धचालक तथा इनके साथ में इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। संसूचक को 77^0K तक द्रव नाइट्रोजन से ठंडा किया जाता है। इसके फलस्वरूप तथा ठंडी की गयी आधुनिक एफ ई टी (FET) इलेक्ट्रॉनिक एम्लीफायर द्वारा यंत्र की पृथक्करण शक्ति, 5.9 KeV वाली एक्स-किरण के लिए 170 eV तक प्राप्त कर सकते हैं। इसके अलावा तत्वों को उत्तेजित करने के लिए Fe^{55} (5.9 KeV), Cd^{109} (22.1 KeV) तथा Am^{241} (59.57 KeV) इत्यादि आइसोटोप अथवा 50 वाट वाले एक्स-किरण उत्पादक का प्रयोग किया जाता है। प्रोटान या अल्फा कणों का उत्पादन 5.5 MeV वान डी ग्राफ त्वरित यंत्र द्वारा किया जाता है। तीनों विधियों द्वारा उत्तेजित करने के यंत्र चित्र - 1 (अ), (ब), (स) में दिखाये गये हैं।

विभिन्न वैज्ञानिक क्षेत्रों में इस विधि की उपलब्धियां :

पदार्थों के तत्वों का अतिसूक्ष्म मात्रा में विश्लेषण करने पर प्राप्त जानकारी का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिक अनुसंधानों में हो रहा है। हमारी प्रयोगशाला में किये गये महत्वपूर्ण प्रयोगों में से कुछ को संक्षेप में आगे प्रस्तुत किया गया है।

(अ) रेडियोआसोटोप द्वारा

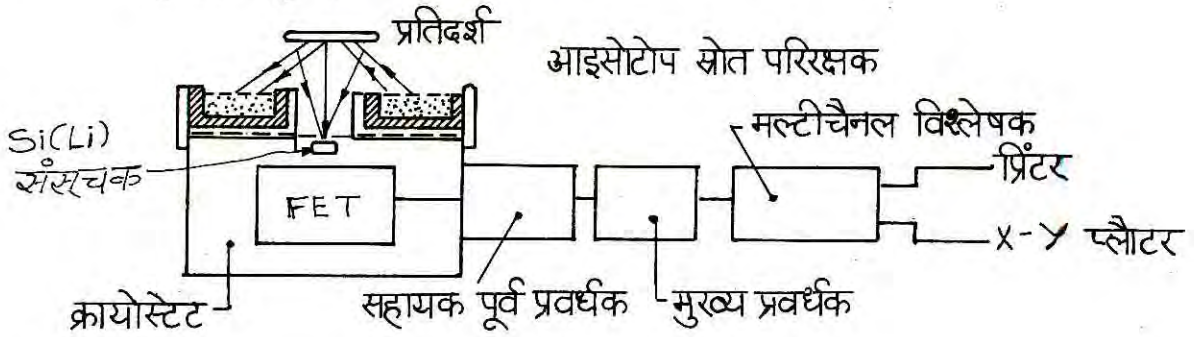

(ब) एक्स किरण उत्पादक द्वारा

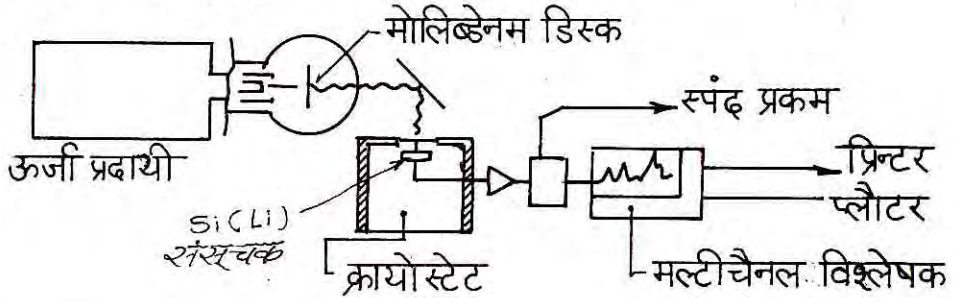

(स) प्रोटोन द्वारा

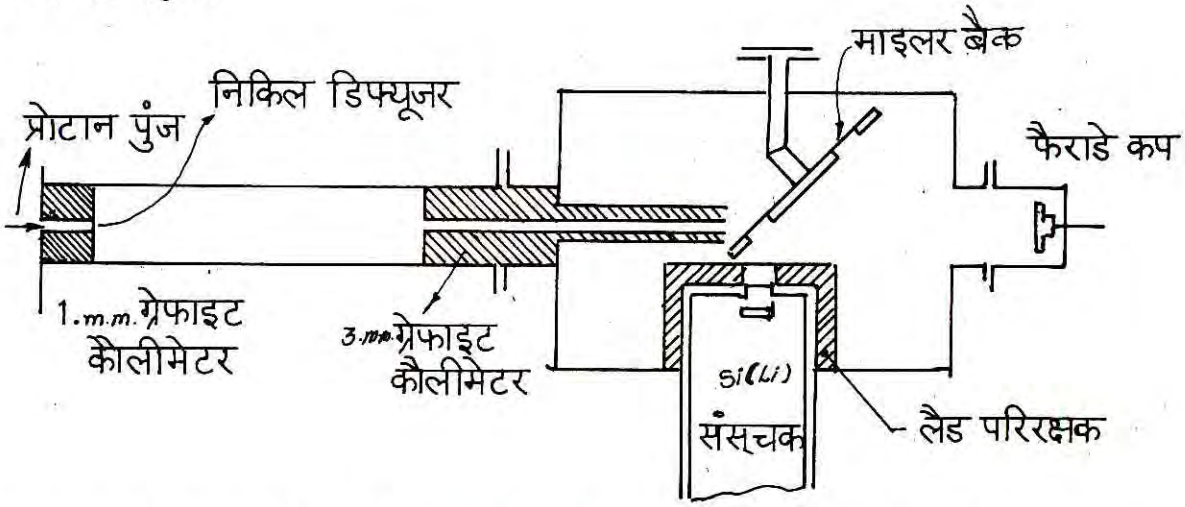

चित्र - 1 : ऊर्जा परिक्षेपक विधि द्वारा तत्वों के एक्स-किरण उत्तेजित करने के विभिन्न साधन।

औषध विज्ञान / जीव विज्ञान / प्रदूषण :

(अ) विकृत गुर्दे (किडनी) के रोगियों के खून में पाये गये तत्वों का विश्लेषण

प्रोटान द्वारा उत्तेजित एक्स-किरण विधि द्वारा 42 अस्वस्थ व्यक्तियों तथा 8 स्वस्थ व्यक्तियों के खून के नमूनों में मौजूद अतिसूक्ष्म तत्वों के विश्लेषण द्वारा पता चला कि रोगियों के खून में Ni, Cu, Br, Sr तथा Pb तत्वों की मात्रा स्वस्थ व्यक्तियों से भिन्न है। Ni की मात्रा स्वस्थ व्यक्तियों के मुकाबले में विकृत गुर्दे के रोगियों में अधिक पाई गई। डायलैसिस करने वाले रोगियों में Cu की मात्रा स्वस्थ व्यक्तियों से अधिक थी। जिन रोगियों की किडनी बदल दी गई उनके खून में Cu की मात्रा सामान्य हो गई। Sr तत्व भी रोगियों में स्वस्थ व्यक्तियों के मुकाबले में अधिक मात्रा में पाया गया। जो रोगी डायलैसिस करवा रहे थे उन के खून में Pb की मात्रा अधिक पाई गई जो किडनी बदलवाने के बाद सामान्य हो गई। Zn, Se, Rb की मात्रा रोगियों अथवा स्वस्थ व्यक्तियों में लगभग बराबर तथा सामान्य पायी गयी। इस अध्ययन द्वारा किडनी के रोग से खून में अतिसूक्ष्म तत्वों का ज्ञान प्राप्त हुआ और रोग के कारणों तथा उपचार संबंधी काफी जानकारी प्राप्त हो सकी।

(ब) भारी यातायात द्वारा प्रदूषण में विद्यमान तत्व Pb का बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव

बम्बई नगर के सायन अस्पताल में भर्ती हुए धारावी निवासी कुछ बच्चों का उपचार डाक्टरों के लिए कठिन समस्या हो गया था। भिन्न भिन्न दवाइयों के सेवन से भी बच्चे स्वस्थ नहीं हो पा रहे थे। अस्पताल के डाक्टरों के अनुरोध पर इन बच्चों के खून के नमूनों में Pb तथा अन्य तत्वों का विश्लेषण प्रोटान द्वारा उत्तेजित एक्स-किरण विधि द्वारा किया गया। इस प्रयोग में 36 रोगियों तथा धारावी निवासी 20 स्वस्थ बच्चों के खून के नमूनों में Pb और अन्य तत्वों का विश्लेषण किया गया। इससे पता चला कि अधिकतर रोगी बच्चों के खून में Pb की मात्रा स्वस्थ बच्चों के मुकाबले में बहुत अधिक पायी गयी। स्वस्थ बच्चों के मुकाबले में कुछ बच्चों में 30 गुणा तक

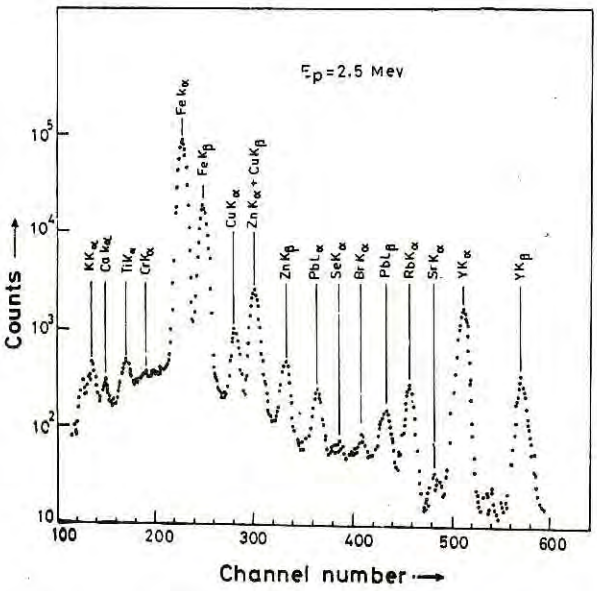

चित्र- 2 : धारावी (सायन, बंबई) निवासी एक अस्वस्थ बच्चे के खून के नमूने का एक्स-किरण स्पेक्ट्रम

Pb की मात्रा पायी गयी। इस अध्ययन से डाक्टरों को इलाज करने के लिए उपयुक्त दवाई का ज्ञान हुआ तथा यातायात से उत्पन्न प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों पर प्रकाश पड़ा। महानगरों में सड़कों के आस पास रहने वाले व्यक्तियों पर यातायात द्वारा फैले प्रदूषण से बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है। एक अस्वस्थ बच्चे के खून के नमूने का एक्स-किरण स्पैक्ट्रम चित्र-2 में दिखाया है।

(स) ईसोफैगस कैंसर और आस पास के स्वस्थ ऊतकों के तत्वों की मात्रा का अध्ययन

टाटा मेमोरियल कैंसर अस्पताल में ईसोफैगस कैंसर से पीड़ित रोगियों के आपरेशन द्वारा ईसोफैगस ऊतक निकाले गये। इन ऊतकों के तत्वों का अध्ययन करने के लिए हमने अपनी प्रयोगशाला में प्रोटान उत्तेजित एक्स-किरण विधि द्वारा ऊतकों का विश्लेषण किया। इन ऊतकों को चार भाग में काट कर बांटा गया - मध्य के दो रोंग पीड़ित भाग तथा बाहरी दिशा के दो स्वस्थ ऊतकों के

तत्वों का विश्लेषण किया जिससे इनमें Ti, Fe, Cu, Zn, As, Rb, Br तथा Pb को मात्रा की जानकारी प्राप्त हुई। इससे से पता चला कि कैंसर पीड़ित ऊतकों में Ti, Fe, Cu, Zn तथा As की मात्रा स्वस्थ ऊतकों के मुकाबले में कम है। ईसोफैगस ऊतकों का अध्ययन पहले नाभिकीय चुम्बकीय अनुनाद द्वारा किया गया था और इसमें कैंसर पीड़ित भाग में विश्रांति समय स्वस्थ भाग के ऊतकों से अधिक पाया गया था। इस अध्ययन द्वारा यह पता चला कि विश्रांति समय किन तत्वों के कारण और कम मात्रा में होने से अधिक हो जाता है। कैंसर के रोग पर तत्वों का क्या प्रभाव पड़ सकता है, यह अध्ययन एक महत्वपूर्ण दिशा प्रदान कर सकता है।

खनिजशास्त्रीय अध्ययन :

भारतीय मोनाज़ाइट खनिजों में ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण विधि द्वारा विरल मृदा तत्वों का विश्लेषण

भारत के चार भिन्न-भिन्न स्थानों (चावरा, मनवलकुरची, तिरनलवेली तथा छत्रपुर) में पाये गये मोनाज़ाइट खनिज का अध्ययन इन चारों स्थानों से प्राप्त नमूनों द्वारा किया गया। ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण विधि द्वारा विश्लेषण करने से La, Ce, Pr, Nd, Sm, Gd, Dy, Y, Zr, Mo, Pb, Th तथा U के तत्व सभी नमूनों में पाये गये। इनमें से La, Ce, Nd, Sm, Gd, Dy की मात्रा सभी चारों स्थानों पर लगभग बराबर पायी गयी तथा Y, Zr, Mo, Pb, Th, U की मात्रा भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न पायी गयी। इस अध्ययन को खनिज शास्त्री बहुत महत्वपूर्ण मान रहे हैं।

धातु कर्मीय अध्ययन :

सामान्य ताप विद्युत अतिचालक $YBa_2Cu_3O_7$ का लेज़र उदवाष्पन द्वारा सूक्ष्म लक्ष्य निर्माण

सामान्य ताप विद्युत अतिचालक सूक्ष्म लक्ष्यों का निर्माण औद्योगिक इकाइयों में बहुत उपयोगी है। हमारी प्रयोगशाला में लेज़र किरणों द्वारा उदवाष्पन कर सूक्ष्म लक्ष्य बनाने की विधि का प्रयोग किया गया। $YBa_2Cu_3O_7$ अतिचालक पदार्थ के भिन्न भिन्न विधियों से सूक्ष्म लक्ष्य बनाए गये। इन लक्ष्यों में मौजूद तत्वों Y, Ba, Cu का गुणात्मक विश्लेषण किया गया। जिस सूक्ष्म लक्ष्य में तत्वों के अंश जाने माने विद्युत अतिचालक $YBa_2Cu_3O_7$ के बराबर पाये गये, उसको बनाने की विधि का ज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार लेज़र किरणों द्वारा उदपाष्पन करने की सही विधि का पता चला। इस प्रयोग में ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण प्रदीप्ति का विशेष महत्व यह है कि अनेकों लक्ष्यों में से कम समय में सबके तत्वों का आंशिक विश्लेषण इस विधि द्वारा सरलता से संभव है।

पुरातत्वशास्त्रीय अध्ययन :

प्राचीन काल में निर्मित काँसे की मूर्तियों के तत्वों का विश्लेषण

प्राचीन काल में निर्मित ब्रॉन्ज (काँसा) की मूर्तियों, जो हमारी बहुमूल्य धरोहर हैं, के तत्वों का विश्लेषण ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण प्रदीप्ति द्वारा किया गया। इनमें मौजूद तत्व जैसे कि Fe, Cu, Zn, Ag, Cd, Sn और Pb की गुणात्मक मात्रा जानने के लिए एक विशेष कम्प्यूटर कोड का निर्माण किया गया। इस कोड में हर तत्व की एक्स किरण तीव्रता का प्रयोग कर तत्वों की मात्रा की जानकारी प्राप्त की गई। इस विधि में किसी मानक नमूने का प्रयोग नहीं किया गया। परंतु अंतर्राष्ट्रीय मानक नमूनों का विश्लेषण कर के तत्वों की मात्रा को प्रमाणित किया जो 10% के अन्दर प्राप्त हुई। इस विधि द्वारा पदार्थ चाहे किसी भी आकार का हो उसे बिना हानि पहुँचाए अथवा बिना मानक नमूने के प्रयोग के तत्वों की मात्रा की जानकारी प्राप्त की जाती है।

ऊर्जा परिक्षेपक एक्स-किरण प्रदीप्ति विधि द्वारा विभिन्न पदार्थों में मौजूद तत्वों का विश्लेषण, भले ही वे अतिसूक्ष्म या अत्यधिक मात्रा में हों, इस विधि द्वारा संभव है। इन यंत्रों और विधि के प्रयोग से विज्ञान की भिन्न भिन्न शाखाओं में किये जा रहे अनुसंधानों में कई दिशाओं में प्रगति की संभावना है। इस विधि में प्रयुक्त यंत्र सरल तथा कम मूल्य के होने के कारण, इसका उपयोग औद्योगिक क्षेत्र में भी लाभकारी है।

❑❑❑

कार्बोकैटायन : एक अतिसक्रिय ट्रांजिएंट कार्बन आयन

डॉ. सूर्यदेव मिश्र,
आण्विक जीव-विज्ञान एवं कृषि प्रभाग,
डॉ. अशोक बैनर्जी,
अध्यक्ष, जैव रासायनिक प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई - 400 085

स्वीडिश रॉयल अकादमी ने प्रो. ओला को 1994 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित करते समय जिस शोध कार्य का प्रसंशात्मक उल्लेख किया, वह था "सर्वदा भ्रामक कार्बोकैटायन विधा।" कार्बोकैटायन अतिसक्रिय होने के कारण किसी तत्व के संपर्क में आते ही अभिक्रियान्वित हो जाते हैं। प्रो. ओला ने परमाम्ल (Super acid) की मदद से पूर्व विदित कार्बोनियम आयन की अर्धायु एवं उच्चसक्रियता का मानकीकरण किया। कालांतर में यह खोज मौलिक रासायनिक शोधों के अतिरिक्त पेट्रोलियम उद्योग में बड़ी लाभकारी सिध्द हुई।

रसायनिकी एक प्रयोगात्मक विधा है। प्रारंभिक विकासीय अवस्था में, इसकी बहुत सी व्याख्याएं सहसबोधी एवं अंतर्बोधी (intuitional) आधार पर की जाती थीं। 'कार्बोनियम आयन' का इतिहास भी कुछ कुछ इससे मिलता जुलता है। इसके अस्तित्व का अनुमानित ज्ञान कुछ रासायनिक प्रकियाओं पर आधारित था। उस समय उपलब्ध वर्णक्रमी विधियों से रासायनिक-अभिक्रियाओं में पैदा होने वाले कम अर्द्धायु के मध्यग (intermediates) का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता था। अत: प्रत्यक्ष साक्ष्यों के अभाव में विश्लेषणात्मक रासायनिक अध्ययनों के आधार पर हाइड्रोकार्बन जैसे कम अर्द्धायु वाले धनायनों के अस्तित्व की भविष्यवाणी की गयी थी। उदाहरणार्थ चित्र-1 में दर्शाये मीरविन-पुनर्व्यवस्था के अंतर्गत कार्बोनियम आयन की परिकल्पना 1922 में की गयी थी, जो बाद में सच पायी गयी। यह

रसायन शास्त्र के प्रोफेसर जार्ज ऐंड्रिवज ओला का जन्म 22 मई 1927 को बुडापेस्ट (हंगरी) में हुआ था। संप्रति आप एक अमेरिकी नागरिक हैं और लोकर हाइड्रोकार्बन अनुसंधान संस्थान के निदेशक तथा केलिफोर्निया विश्वविद्यालय (लास एंजेल्स) में प्राध्यापक हैं। प्रो. ओला की प्रारंभिक शिक्षा बुडापोस्ट में हुई। प्रो. जी जेंप्लेन के मार्गदर्शन में 1949 में उन्होंने पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की इसके बाद (1954-56) वे हंगेरियन विज्ञान अकादमी के केंद्रीय अनुसंधान संस्थान में रसायन-विभाग के अध्यक्ष और संस्थान के वैज्ञानिक सहनिदेशक के पद पर रहे। 1956 की राजनीतिक उथल-पुथल के कारण अपना देश छोड़ कर कनाडा जाना पड़ा, जहाँ उन्होंने डोव रसायन कंपनी के शोध-वैज्ञानिक पद पर काम किया। कुछ समय बाद वे इसी कंपनी के अमरीकी कार्यालय मैसाच्युसेट चले गये और वहाँ 1964 तक कार्यरत रहे। 1965 - 77

(पृष्ठ 49 पर जारी)

प्रोफेसर जार्ज ऐंड्रिवज ओला . . .
की अवधि में, सी.एफ. गेवेरी मानक-प्राध्यापक की हैसियत से, केस वेस्टर्न आरक्षित विश्वविद्यालय क्लीवलैंड, ओहियो, अमेरिका में कार्यरत रहे। प्रो. ओला एक लब्धप्रतिष्ठित वैज्ञानिक ही नहीं, अपितु एक संवेदनशील एवं मानवतावादी युग पुरुष हैं। वे सदैव वैज्ञानिकता के सामाजक पहलू के सशक्त पक्षधर रहे हैं। हाई ऑक्टेन संख्या व शक्ति वाले ईंधन की खोज में संभवतः उनकी यही मानवोपयोगी भावना साकार हो उठी है।

उल्लेखनीय है कि 1920-30 के दशक में कई वैज्ञानिक, जैसे मीरविन (जर्मनी) ["कार्बोनियम कण" के जनक], इंग्लैंड के इंगोल्ड तथा अमेरिका के व्हाइटमोर के अध्ययनों के आधार पर इस "अलकिल धनायन" के अस्तित्व को मान्यता मिल चुकी थी। हंगरी छोड़ने से पूर्व ही प्रो. ओला कार्बोनियम-कण की खोजों की ओर काफी आकर्षित हो चुके थे। इन कणों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये अतिसक्रिय होने के कारण, किसी भी तत्व के संपर्क में आते ही अभिक्रियाशील हो जाते थे। इन तीव्र प्रतिक्रियाशील मध्यगों के स्थायित्व हेतु, प्रो. ओला ने अपूर्ण इलेक्ट्रॉन वाले एन्टीमनी पेंटाफ्लोराइड (SbF_5) जैसे परमाम्लों (सुपर एसिड) का प्रयोग किया। परमाम्लों द्वारा कार्बोकैटायनों का स्थिरीकरण हो जाने के बाद, उनका अध्ययन किसी भी वर्णक्रमी विधि (UV, ESR, NMR इत्यादि) द्वारा आसानी से किया जा सकता है। इस प्रकार प्रो. ओला के सफल प्रयोगों के आधार पर 1962 में सबसे पहली बार कार्बोकैटायनों की निश्चित पहचान व मानकीकरण किया गया। इतना ही नहीं, प्रो. ओला ने धनायन कण की नयी परिभाषा दी (उनके अनुसार धनावेशित कार्बन को कार्बन कैटायन का नाम दिया गया)। कार्बोकैटायनों को पुनः दो वर्गों में बांटा गया; एक को कार्बोनियम तथा दूसरे को पेंटा कोऑर्डिनेटेड कार्बोनियम आयन कहा गया (चित्र-2)। बाद में इस कण को अन्य गुणों, जैसे धनायनता तथा कार्बन के छः इलेक्ट्रॉन आदि का सहज बोध हुआ।

कार्बोकैटायन के कुछ विशेष गुण निम्नलिखित हैं :

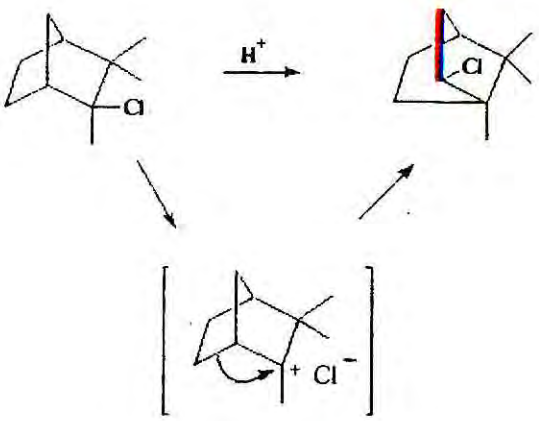

चित्र - 1 : मीरविन पुनर्व्यवस्था

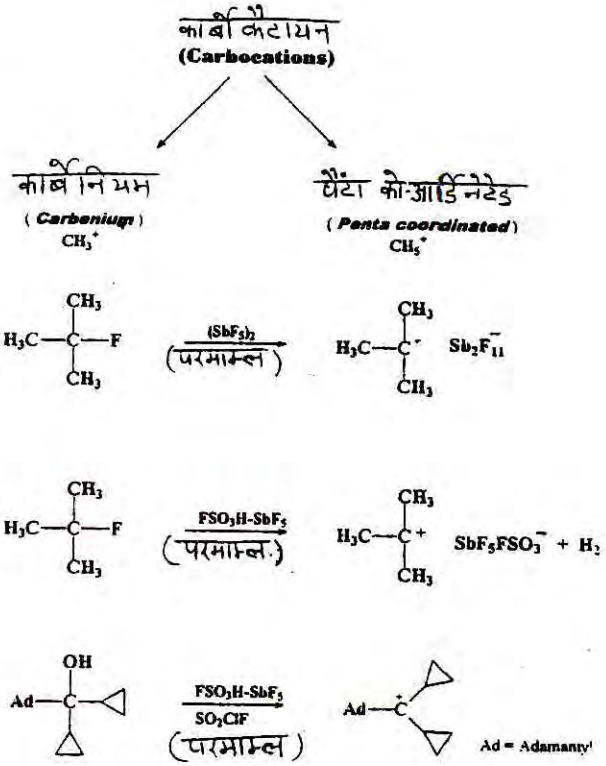

चित्र - 2 : कोर्बोकैटायन के कुछ उदाहरण

1. न्यूक्लियोफाइल युग्मन
2. पुनर्व्यवस्थित होकर अधिक स्थिरता वाले कार्बोनियम कणों की उत्पत्ति/संरचना।

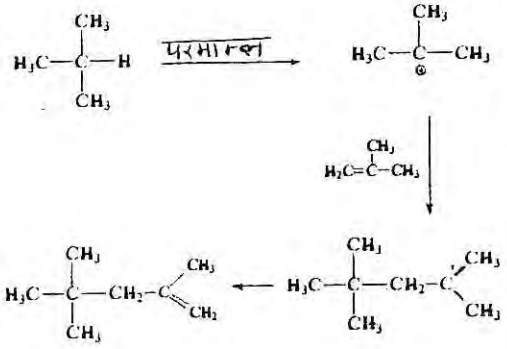

चित्र - 3 : सरल से जटिल हाइड्रोकार्बन का निर्माण

3. प्रोटान विस्थापन द्वारा नये अल्केनों के उद्भवों को प्रेरित करना ।

कार्बोनियम से सम्बन्धित मौलिक शोधों/अध्ययनों ने कई महत्वपूर्ण एवं नये अभिक्रयकों एवं संश्लेषित युग्मकों को जन्म दिया है । इसी अध्ययन द्वारा छोटे-छोटे कणों से विशालकाय एवं जटिल हाइड्रोकार्बनों को संश्लेषित किया जा सका है ।

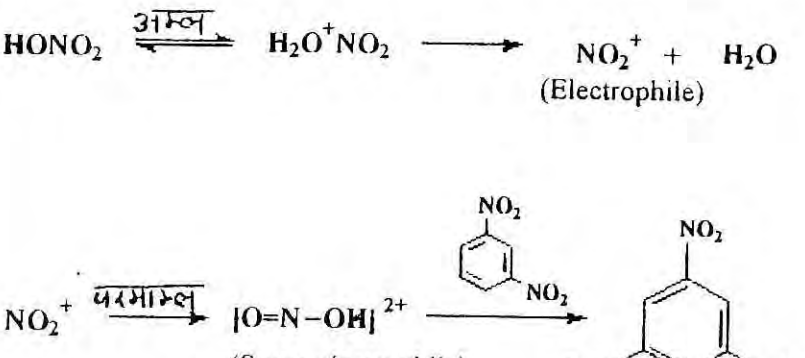

चित्र - 4 : सुपर इलेक्ट्रोफाइल

इस प्रकार प्रो. ओला की मौलिक-शोधों ने आज के पेट्रोलियम-ईंधन उद्योग में नयी जान फूंकी (चित्र-3) । पुनर्व्यवस्थावन अभिक्रियाओं के फलस्वरूप, कम शक्ति एवं सीधी श्रृंखला वाले हाइड्रोकार्बनों से उच्च ऑक्टेन संख्या वाले जटिल तथा प्रशाखी पदार्थों को संश्लेषित किया जा सका । इन सभी प्रयासों के फलस्वरूप आज हमें अनेकों किस्म के उच्च ऑक्टेन संख्या वाले पेट्रोलियम ईंधन उपलब्ध हैं ।

प्रो. ओला ने 2-नोरबोरनाइल कैटायन की स्थिरता नियतांक - 158 सें. पर एक जटिल घोल (SbF_5-SO_2CeF-SO_2F_2) में दर्शाया । एन. एम. आर. वर्णक्रम मापी से प्रो. वींसेटीन (हारवर्ड) द्वारा परिकल्पित कार्बोकैटायन-सतेवन (Bridged Carbocation/Non classical Carbocation) को भी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जा सकता । इस साक्ष्य ने प्रसिद्ध वैज्ञानिक एच. सी. ब्राउन एवं वींस्टीन के बीच, लंबे अरसे से उलझी गुत्थी को सुलझाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । आज 67 वर्ष की आयु में भी प्रो. ओला संश्लेषणात्मक जैव-रासायनिकी के क्षेत्र मे यथापूर्व शोधरत हैं । हाल ही में, पिछले वर्ष (1994) उन्होंने परमाम्लों की मदद से सुपर इलेक्ट्रोफाइलों (चित्र-4) की कल्पना को साकार किया।

हमें पूर्ण विश्वास है कि उपरोक्त संक्षिप्त विवरण हमारे देश के शोधकर्ताओं को एक नयी प्रेरणा एवं दिशा देगा । वैज्ञानिकता के साथ-साथ प्रो. ओला की तरह अपनी सामाजिक जिम्मेदारी (उपभोगी दृष्टि से), तथा पर्यावरणीय स्वच्छता, संरक्षण एवं संतुलन के प्रति सजग होंगे और अपने मूलभूत शोधों को जनोपयोगी दृष्टिकोण भी प्रदान भी करेंगे ।

❐❐❐

टिप्पणियां

1. कुमाऊं में परम्परागत वनौषधि उपचार

कुमाऊं का सम्पूर्ण पर्वतीय क्षेत्र अनेक प्रकार की वनौषधियों का विशाल भण्डार है। आज जब कि सर्वत्र एलोपेथिक दवाओं का बोलबाला है, कुमाऊं के बुजुर्ग इन परम्परागत वनौषधियों का प्रयोग अभी भी करते हैं किन्तु नई पीढ़ी इन औषधियों को भूलती जा रही है। कुमाऊं में असंख्य ऐसी वनस्पतियाँ हैं जिनका उपयोग रोगों के निदान में किया जा सकता है। अनेक वैद्य भी इनका प्रयोग करते हैं। पेड़-पौधों की छाल, फल, बीज, फूल, पत्तियाँ, जड़ तथा लकड़ी आदि का उपयोग विभिन्न दवाओं के रूप में किया जाता है। ये दवायें बहुत लाभ-दायक हैं तथा इनसे कोई हानि भी नहीं होती। इनके सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी न होने से लोग इनका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। कुछ ऐसी वनौषधियाँ हैं जिन्हें उपयोगी जानकर लोग बाहर भेजने लगे हैं, जिससे इन वनौषधियों का अस्तित्व ही समाप्त होने को है। आवश्यकता इस बात की है कि किन वनस्पतियों का दोहन किस प्रकार किया जाय कि इनका समुचित लाभ भी प्राप्त हो तथा अस्तित्व भी बना रहे।

यहाँ पर उन वनौषधियों का उल्लेख किया जा रहा है जो कुमाऊं में लगभग सभी स्थानों पर पायी जाती हैं तथा जिन्हें सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। दवाओं के बढ़ते हुए मूल्यों के कारण जो लोग उनका उपयोग करने में असमर्थ हैं उनके लिए तो वनौषधियाँ आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हैं।

प्रमुख वनौषधियों का विवरण

वनौषधि का नाम	बौटेनिकल नाम	कुमाऊं में प्रचलित नाम	उपयोग
अरण्य	वाखेसकम थेपसस	एकनवीर या वन तमाखू	इसके सभी भाग उपयोगी हैं। खांसी, संधिवात, दर्द एवं आमातिसार में लाभदायक है।
कुरी	लेंटाना केमेरा	कुरि	यह टिटनेस और मलेरिया में उपयोगी है।
तियूर	जेंथो जाइलम एलेकम	तियुर	इसकी शाखा, फल, बीज एवं पत्तियों से दंत-रोग नहीं होता। टहनी जतून के रूप में प्रयोग में लायी जाती है।
दूब	सिनोडोन डेक्टीलोन	दुब	त्वचा विकार, पित्त, खांसी, ज्वर व कुष्ठ नाशक है।
पाषाण भेदक	सेक्सी फ्रेगा लिगुलेटा	सिलफोड़ा	इसकी जड़ पथरी गलाती है। हृदयरोग, प्रमेह, प्लीहा रोगों में बहुत उपयोगी है।
बुरांश	रोडोडेनड्रोन आबौरियम	बुरुंश	इसके फूल तथा फूलों से निर्मित शरबत हृदय रोगों में लाभकारी हैं।
दालचीनी	सिनेमोमम जायलेकिनम	दालचिनी या किकड़ा	कृमिनाशक, पौष्टिक, वात, पित्त, अतिसार व गुदा की व्याधियों के लिए उपयुक्त है।
किलमोड़ा	बरबेरिस एरिस्टेरा	किलम्वड़	विष विकार, आँख व कान के रोगों, ज्वर, प्रमेह, त्वचा रोगों में लाभकारी।
चिरायता	स्वीरेटा चिरेटा	चिरैता	पाचन शक्ति बढ़ाता है। ज्वर, खाँसी तथा बवासीर में उपयोगी है।

वनौषधि का नाम	बौटेनिकल नाम	कुमाऊं में प्रचलित नाम	उपयोग
वन हल्दी	करक्यूमा ऐरोमेटिकाट	वनहल्द	कुष्ठ , रक्त वात नाशक । सर्पदंश में भी लेप से लाभ होता है ।
तगर	वेलेरिना वोलिची	सम्यी	वातनाड़ी तंतुओं के लिए उपयोगी । पीड़ा हारक । धूप व सुगंध में प्रयोग किये जाने वाला ।
वन तुलसी	आरिगेनम मेजोराना	वणतुलसी	कफ एवं वात में उपयोगी । खुजली नाशक, कृमि व विषनाशक, मलेरिया नाशक ।
भांगा	केनेविस सेटिवा	भांग	नींद देने वाला, पाचक । सूजाक - वात तथा आमातिसार में उपयोगी । सेक करने वाला ।
मुलहठी	ब्लिसराइजा ग्लेब्रा	मुलैठी	आमाशय के रोग, खांसी तथा पेप्टिक अल्सर को ठीक करती है । इसकी जड़ काम में आती है ।
वनफशा	वायोला आडोरेटा	गुल बनश्शा	इसके फूलों की चाय पी जाती है । यह गर्म पेय है । ज्वर, कफ तथा दमा नाशक है ।
बच	एकोरस केलेयस	बँज	इसकी जड़ कृमिनाशक है । गले के रोगों में लाभदायक है । उन्माद व वात को नष्ट करने वाला है ।
वन अजवाइन	याइमस सरफाइलस	वनज्वांण	पाचनशक्ति को बढ़ाती है । गुर्दे व नेत्र रोगों में लाभदायक है । दंत क्षय को रोकती है ।
रालवृक्ष	शोरिया रुबेस्टा	शाल की राल	कृमिनाशक । जले व घाव को ठीक करने वाला । सुजीक, खुजली व कुष्ट में लाभदायक ।
रामबांस	एलो अमेरिकाना	रामबाँस	यह विष व कफ को दूर करने वाला है । इसकी पत्तियों का लुआब काम में आता है ।
सालम मिश्री	आर्चिस लेटिफोलिआ	सालम मिसिरि	रक्तशोधक, शुक्र को बढ़ाने वाली, बल प्रदान करने वाली तथा पाचन को बढ़ाने वाली है ।
दबना	आर्टिमिसिया वलगेरिस	पाती	धूप बनती है । खुजली व घाव आदि में उपयोगी है । पाचन शक्ति को बढ़ाती है ।
रीठा	सपेन्डिस युकोरोसी	रीठू	इसके फल विष को दूर करने वाले, वात हरने वाले तथा कीड़ों को मारने वाले होते हैं ।
कटेरी	सोलोनम जेन्थोकार्षम	कंटकारी	ज्वर, हृदय रोग, बवासीर, कफ आदि में बहुत उपयोगी है । फल व बीज काम में आते हैं ।
बथुआ विलायती	चीनोफेडियम एम्ब्रोसी ओड	उपनिया झाड़	इसकी पत्तियाँ पेट के कीड़ों को मारती हैं । पिस्सुओं को भगाने में यह कारगर है ।
बाकुल	फेसिओलस वलगेरिस	बांकुल	इसके सभी भाग विशेषकर फलियाँ काम में आती हैं । गुर्दे की सफाई करता है ।
जंगली गेंदा	रिगेटस माइनर	वणहजारी	ग्रंथियों की सूजन, घावों आदि को ठीक करने के काम आती है ।
धतूरा	दतूरा स्ट्रेमोनियम	धतुर	इसकी पत्तियाँ तथा बीज ज्वर, कुष्ठ व चर्म रोगों को दूर करते हैं । पागल कुत्ते के विष को भी यह दूर करता है ।

मोहन चन्द्र कबडवाल
हायर सेकन्डरी स्कूल,
मुक्तेश्वर, नौनीतल - 263 138 (उ. प्र.)

2. अद्‌भुत गुणों की खान - ब्राह्मी

आदि काल से ही मावन, ईश्वर आस्था के लिए वृक्षों तथा जड़ी-बूटियों की आराधना करता रहा है। विभिन्न सम्प्रदायों के व्यक्तियों ने अपनी लेखन व कल्पना शक्ति के आधार पर नाना प्रकार के वृक्षों की उपासना कर आराध्य देवों में अपनी आस्था प्रकट की है। मनुष्य की उस प्रकृति से एक तरफ धार्मिक भावना के वशीभूत प्रकृति के विरुद्ध कार्य न करना प्रकट होता है, वहीं दूसरी ओर अति उपयोगी वनस्पतियों के प्रति आकर्षण और संरक्षण का संकेत मिलता है। अभी हाल में ही ब्राह्मी चर्चा में आयी है। यह ऐसी वनस्पति है जो स्मरण शक्ति विकसित करने तथा मस्तिष्कगत स्नायविक दुर्बलता दूर करने वाली अचूक वनौषधि है।

ब्राह्मी की लता अधिक फैलने वाली है इसके पत्ते दलदार चिकने व प्रत्येक जोड़ पर एक से अधिक होते हैं। पत्तियों का आकार गोल वृक्काकार होता है। इनमें सात धारियां उभरी हुई होती हैं जिनकी लम्बाई-चौड़ाई लगभग आधा इंच से ढाई इंच तक होती है। ब्राह्मी देते समय दूध नहीं देना चाहिये। इस जड़ी बूटी के पच जाने के बाद ही दूध देना चाहिये। वसंत ऋतु में ब्राह्मी में फूल आते हैं। इनका रंग लाल या हल्की नीली आभा वाला होता है। फूल ब्राह्मी लता के प्रत्येक जोड़ पर खिलते हैं। ग्रीष्म ऋतु के आने पर ये फूल पांच-छह छोटे छोटे कड़े और चपटे फलों में विकसित हो जाते हैं। ब्राह्मी की जड़ बारीक रेशों की शक्ल में होती है। ब्राह्मी भारत के अलावा कहीं नहीं पायी जाती है। भारत में भी यह उत्तर प्रदेश और हिमाचल के हिमालयवर्ती क्षेत्रों में गंगा आदि नदियों के किनारे पायी जाती है। इसका उपयोग एक साल के अन्दर कर लेना चाहिये नहीं तो यह खराब होने लगती है।

ब्राह्मी मस्तिष्क के ऊतकों और तंतुओं को पुष्ट करती है। कमजोर मन-मस्तिष्क वाले लोग सामर्थ्य से अधिक कार्य करने के कारण अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं, अक्सर क्षुब्ध रहते हैं, चिडचिड़ापन आ जाता है। उनकी याददाश्त काम करना बंद कर देती है और कभी-कभी ये मानसिक विकृति के शिकार भी हो जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए आयुर्वेद के ग्रंथों में ब्राह्मी के कई प्रयोग सुझाए गए हैं। इसको लेने का सबसे आसान तरीका है कि तीन-चार माशा ब्राह्मी, एक-डेढ़ माशा शंखपुष्पी, तीन-चार दाने काली मिर्च, स्वाद के अनुसार मिश्री के साथ जल में घोट-छान कर रोजाना सुबह पी ली जाती है। परीक्षार्थियों को तो यह औषधि काफी लाभदायक सिद्ध हुई है।

यह मस्तिष्क की दुर्बलता के साथ-साथ हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, स्वर दोष, हिस्टीरिया, अनिद्रा, वीर्य एवं मूत्र सम्बन्धी विकारों के लिये काफी उपयोगी है। यह हमारी वनौषधि संपदा का एक ऐसा अमूल्य रत्न है जो भारत के बाहर और कहीं भी नहीं है। हम इसको थोड़े से प्रयास में आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। यह पौधा हमारे देश के लिये वरदान सिद्ध हो सकता है।

डॉ. राकेशसिंह सेंगर

पादप कार्यिकी विभाग, (सी. वी. एस. एच),
गो. ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
पन्तनगर - 263 145

डॉ. मधु पाण्डेय

पादप विज्ञान विभाग,
रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय,
बरेली - 243 006

❐❐❐

बाल विज्ञान

धूप में फोटोक्रोमी शीशे अपना रंग क्यों बदलते हैं ?

धूप के चश्मों में धूप से बचने के लिए रंगीन शीशे उपयोग किये जाते हैं। प्रायः ये शीशे स्थायी तौर पर रंगीन होते हैं। अतः धूप में तो ये आँखों को कुछ राहत देते हैं, परंतु धूप से छाया में आने पर अनुपयोगी हो जाते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु चश्मों में फोटोक्रोमी शीशे उपयोग में लाये जाते हैं। ये शीशे धूप में आने पर अपने आप गहरे काले होकर धूप बचाते हैं तथा छाया एवं अंधेरे में आने पर पुनः सफेद होकर कम प्रकाश में भी देखने में सहायता करते हैं।

ऐसा इसलिए होता है कि फोटोक्रोमी शीशों में सिल्वर आयोडाइड अथवा ब्रोमाइड के बारीक क्रिस्टल होते हैं। जब ये शीशे धूप के संपर्क में आते हैं तो ये क्रिस्टल बिखर जाते हैं जिससे चश्मे के शीशे गहरे काले होकर धूप से बचाते हैं। क्रिस्टलों का यह बिखराव अस्थायी होता है, अतः धूप से छाया अथवा अंधेरे में आने पर यह बिखराव समाप्त हो जाता है, क्योंकि क्रिस्टल अपनी पूर्व अवस्था में वापस आ जाते हैं एवं चश्मे के शीशे पुनः सफेद हो जाते हैं। यह क्रिया स्वतः छाया एवं प्रकाश में होती रहती है। इस कारण शीशे भी रंग बदलते रहते हैं।

मृत सागर क्या है ?

मृत सागर एक ऐसी झील है जो जॉर्डन तथा इजराइल के मध्य स्थित है। यह लगभग 80 कि.मी. लंबी तथा 5 से 20 कि.मी. चौड़ी है। समुद्र तल से ऊँची होने के बजाय यह समुद्र तल से लगभग 400 मीटर नीची है। ऐसी मान्यता है कि यह कभी समुद्र की सतह से लगभग 430 मीटर ऊँची थी। तब इसमें जीव जंतु प्रवास करते थे, परंतु आज इसमें कोई भी जीव-जंतु नहीं रहता है। इससे कोई नदी निकलने के बजाय इसमें जॉर्डन नदी तथा अनेक नाले आकर मिलते हैं, तथा घुलनशील नमक की मात्रा अपने साथ लाकर बढ़ाते हैं।

सामान्यतया अन्य समुद्रों में नमक की मात्रा 4 से 5 प्रतिशत तक पायी जाती है, परंतु मृत सागर में यह मात्रा सर्वाधिक 25 प्रतिशत के लगभग है। इसके अतिरिक्त इसमें साधारण लवणों के अलावा जहरीले पदार्थ भी पाये जांते हैं, परिणामतः समुद्रों के पानी को तो चखकर जाना जा सकता है, परंतु इसे तो चखा भी नहीं जा सकता, क्योंकि इसे चखते ही खारेपन के स्वाद के साथ चखनेवाला अस्वस्थ हो जाता है।

अतः इस सागर के पानी में कोई जीव जंतु नहीं रह पाता है। जॉर्डन नदी एवं अन्य नालों के साथ आने वाले जीव तथा अन्य समुद्री जीव इस सागर में प्रवेश करने पर मर जाते हैं। अतः यह सागर एक तरह से मौत का सागर है, अतएव इसे **मृत सागर** कहा जाता है।

प्रस्तुति : डॉ. डी. डी. ओझा
गुरु कृपा, ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा, जोधपुर

❐❐❐

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केन्द्र से :

1. घाव-पट्टी के रूप में हाइड्रोजेल का उपयोग

हाइड्रोजेल त्रिआयामी तिर्यकबद्ध पोलीमर जालक हैं जो जल की अत्यधिक मात्रा (95% तक) अपने में समाविष्ट रखकर भी अपना आकार और मजबूती बनाये रखते हैं। इन हाइड्रोजेलों का निर्माण आसानी से गामा विकिरण जनित तिर्यक बंधनों से किया जा सकता है।

ये पदार्थ विभिन्न प्रकार से उपयोगी हैं। कई प्रकार के उपयोगों : जैसे एंजाइमों के अचलीकरण, जैविक अणुओं के कैप्सूल बनान व रोगों के निदान हेतु युक्तियों के निर्माण आदि के लिए विकिरण जनित तिर्यक बद्ध जेलों का विकास रसायनिकी प्रभाग में किया जा चुका है। गत कुछ वर्षों से दुनियां भर में घाव वाले व जले हुए लोगों के इलाज हेतु इन हाइड्रोजेलों के उपयोग के प्रयोग चल रहे हैं। इन से ढ़कने पर इस प्रकार के घाव तेजी से भरते हैं और निशान भी कम पड़ते हैं। रसायनिकी प्रभाग ने इस उद्देश्य से एक नयी तरह का विकिरण जनित तिर्यक बद्ध हाइड्रोजेल का विकास किया है। भा. प. अ. केन्द्र के अस्पताल के सहयोग से इसके मूल्यांकन के प्रयास जारी हैं।

2. रेडियोधर्मी अपशिष्ट घोल से जियोलाइट द्वारा सिजियम और स्ट्रौंशियम का पृथक्करण

देश में उपलब्ध सोडियम, सिजियम एवं स्ट्रौंशियम युक्त संश्लिष्ट जियोलाइटों के आयन-विनिमयक, मणिभीय और तापीय अभिलक्षणों का अध्ययन किया गया। एक्स-किरणीय व विभेदी-तापीय विश्लेषण से इस तथ्य की पुष्टि हुई कि संश्लिष्ट पदार्थ ARI जियोलाइटों की 'सामान्य श्रेणी' में व 4A पदार्थ 'A' श्रेणी में आते हैं। संतुलित साम्यावस्था में सोडियम युक्त जियोलाइटों द्वारा अंतर्ग्रहित सिजियम व सोडियम की मात्रा का अध्ययन pH, समय व सोडियम-सांद्रता के फलन रूप में किया गया। pH के दृष्टिकोण से जियोलाइटों पर न्यूक्लियाइड़ों का वितरण 9 pH पर अधिकतम पाया गया। सोडियम आयन की उपस्थिति, सिजियम व स्ट्रौंशियम के अवशोषण में बाधक पायी गयी, पर सोडियम सांद्रता 0.01M से कम होने पर इन न्यूक्लियाइडों का वितरण गुणांक इतना अधिक था कि निम्न स्तरीय रेडियो-सक्रिय अपद्रव्यों के उपचार हेतु इन जियोलाइडों के उपयोग की संभावनाओं का अध्ययन जरूरी समझा गया। इन पदार्थों की सिर्फ 5 मि ली. के संस्तरों का प्रयोगशाला के कालमों में उपयोग कर यह पाया गया कि ये ARI जियोलाइट-सिजियम और 4A जियोलाइट - स्ट्रौंशियम को अत्यधिक कम स्तर के अपशिष्ट घोलों के अधिक आयतन से अलग करने में प्रभावी हैं। (6000 के संस्तर आयतन के संवेश प्रवाह के लिए विसंदूषण गुणांक 50 पाया गया।) अतः यह जियोलाइट प्रणाली - न्यून स्तर के अपशिष्टों के बड़े पैमाने पर उपचार में भविष्य में उपयोगी हो सकती है।

3. अंटार्कटिका के आठवें, नौवें एवं दसवें ग्रीष्मकालीन भारतीय अभियान में भा. प. अ. केंद्र का योगदान

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने 1988 से 1991 के दौरान आयोजित अंटार्कटिक के आठवें, नौंवे एवं दसवें ग्रीष्मकालीन भारतीय अभियान में सक्रिय रूप से भाग लिया था। इन अभियानों में केंद्र के पर्यावरण मूल्यांकन प्रभाग से सर्वश्री टी. वी. रामचंद्रन, ए. पी. साठे, पी. वी. जोशी एवं स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग से श्री एम. सी. बालानी ने भाग लिया था। इस अभियान में भाग लेने वाले उपर्युक्त वैज्ञानिकों का मुख्य उद्देश्य अंटार्कटिक के मानवरहित एवं पर्यावरणीय प्रदूषण से मुक्त स्थल से वहां के वातावरण में उपलब्ध प्राकृतिक रेडियो सक्रियता, वहां से एकत्रित भूमि, जलीय एवं जैविक नमूनों में भारी धातुओं की सांद्रता के सम्बन्ध में पृष्ठभूमीय आधारभूत आंक्ड़ों का संग्रह करना था। वायु, जल एवं भूमि सम्बन्धी नमूने लगभग सभी अभियानों में एकत्रित किये गये, पर जैविक नमूने केवल दसवें अभियान के दौरान ही एकत्रित किये जा सके। नमूनों में रेडियो सक्रियता एवं भारी धातु सांद्रण पर अपने आप में एक पूर्ण आंकडा आधार तैयार किया गया है और उसे भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र की तकनीकी रिपोर्ट (BARC /1994/E/003) में संकलित

किया गया है। प्रस्फुरण सर्वेक्षण मीटर का उपयोग कर पृष्टभूमीय गामा विकिरण एवं SSNDT का उपयोग कर वायु के अंतः रेडॉन स्तरों का भी मापन किया गया है। वायु के धन एवं ऋण आयन सांद्रणों का भी मापन किया गया है। यह आशा है कि मानवीय गतिविधियों के प्रभाव से मुक्त सुदूरवर्ती पर्यावरण में रेडियो सक्रियता एवं अनुरेख स्तर (Trace level) की भारी धातुओं के संदर्भ स्तरों की जानकारी प्राप्त रखने में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए उक्त रिपोर्ट काफी उपयोगी साबित होगी। इस रिपोर्ट में कुल 26 तालिकाएं एवं 25 संदर्भ संकलित हैं। इस रिपोर्ट की भूमिका पर्यावरणीय मूल्यांकन प्रभाग के अध्यक्ष, श्री के. ए. वी. नांबी ने लिखी है। इस रिपोर्ट की प्रतियां अध्यक्ष, पुस्तकालय एवं सूचना सेवा प्रभाग, भापअ केन्द्र, से प्राप्त की जी सकती हैं।

प्रस्तुति : डॉ. कैलाश चन्द्र भल्ला
रसायनिकी प्रभाग, भा. प. अ. केन्द्र,
बंबई - 400 085.

अन्य समाचार :

1. अब पौधों में कुदरती तौर पर टीके पनपाये जा सकेंगे

अभी तक तो अनेक बीमारियों के टीके परखनली में कोशिका पनपा कर बनाये जाते हैं लेकिन अब जेनेटिक इंजिनियरिंग की सहायता से न केवल आदमियों के बल्कि जानवरों की कई बीमारियों के टीके पौधों में कुदरती तौर पर पनपाये जा सकेंगे। यह तकनीकी न सिर्फ ज्यादा सुरक्षित और सस्ती साबित होगी बल्कि इसके द्वारा टीकों को संग्रह करके रखना भी आसान हो जायेगा। पौधों से पैदा किये जा सकने वाले टीकों में गायों को होने वाले खुरपका और मुंहपका रोग के टीके भी शामिल होंगे। यह आशा हैं कि ब्रिटेन के जॉन इन्सेटर और अमेरिका के पर्डू विश्वविद्यालय के जीन इंजीनियरों द्वारा विकसित इस तकनीक से जल्दी ही खुरपका और मुंहपका के अतिरिक्त हेपेटाइटिस जुकाम और पैपेलोमा विषाणु के लिए वनस्पति जन्य टीके बनने लगेंगे।

अमेरिका और इग्लैंड के इन वैज्ञानिकों ने अपने प्रयासों के दौरान पशुओं के खुर मुहपका पैदा करने वाले विषाणुओं पर मनुष्यों में एड्स पैदा करने वाले विषाणुओं को लोबिया में मौजैक रोग पैदा करने वाले विषाणुओं में डालने में कामयाबी हासिल की है। नयी दिल्ली स्थित ब्रिटिश उच्चायोग द्वारा प्रकाशित ब्रिटिश समीक्षा के अनुसार एक पत्ती से खुर मुंहपका रोग के टीके की करीब 200 खुराकें तैयार की जा सकती हैं। इस नयी तकनीक से एक ग्राम विषाणु केवल 30 पाउण्ड में प्राप्त किया जा सकता है। विषाणु जैसे बेहद सूक्ष्म जीव की दृष्टि से एक ग्राम मात्रा भी बहुत ज्यादा होती है। दूसरे परम्परागत तरीकों से विषाणु की इतनी मात्रा प्राप्त करने पर कई गुना अधिक धन खर्च करना होगा।

लोबिया के मौजैक विषाणु के जीनोम जीनकोख में राइबोन्यूक्लिक एसिड (आर. एन. ए.) के दो सूत्र होते हैं, एक को आर. एन. ए. 1 और दूसरे को आर. एन. ए. 2 कहा जाता है। विषाणु के खोल में आवरण प्रोटीन की बड़ी और छोटी किस्मों की 60 प्रतियां होती हैं, इनके बनाने का काम आर. एन. ए.-2 के जिम्मे होता है। छोटी प्रोटीनों वाले हिस्से में से बाहरी प्रोटीन डालने की तकनीक भी खोजी गयी है। इसके लिए पहला प्रयोग पशुओं में खुरपका और मुंहपका रोग पैदा करने वाले विषाणुओं के आवरण में प्रोटीन वी. पी 1 का 25 अमीनो एसिड वाला टुकड़ा डालकर किया गया।

ब्रिटिश के जान पेरी की रिपोर्ट जोकि ब्रिटिश समीक्षा में प्रकाशित की गयी है, में कहा गया है कि अमीनो एसिड से बना यह टुकड़ा अत्यंत संक्रामक होता है। यह एफ. एम. डी. का लूप कहलाता है, इसे अन्दर डालने के लिए आर. एन. ए.-2 की मदद ली जाती है जो पूरी लम्बाई का सी. डी. एन. ए. बनाता है जिसमें ओलिगो न्यूक्लिफोटाइड डाला जाता है जो एक गोल प्लासमिड का निर्माण करता है। इसे पी. एम. टी. 7 एफ. ए. डी. वी. 1 नाम दिया गया है। इससे लोबिया के पौधे को संक्रमित करने के लिए आर. एन. ए. 1 की प्रतियों के साथ मिश्रित करके लोबिया के बीजों से फूटे अंकुरों पर वुरक देते हैं। इस तरह पौधों पर मौजैक विषाणु से संक्रमित होने के लक्ष्य प्रकट होने लगते हैं, लेकिन ये लक्ष्य कुदरती मौजैक विषाणुओं से अलग होते हैं।

वैज्ञानिकों ने जब संक्रामित पौधों की पत्तियों को इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से परखा तो मौजैक विषाणु के कण स्पष्ट दिखायी देने लगे। ये विषाणु के कण लोबिया की पत्ती को नुकसान भी पहुँचाते हैं।

प्रस्तुति : डॉ. राकेश सिंह सेंगर,
पादप कार्यिकी विभाग, गो. ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर - 263145

2. दिल को मजबूत बनाएगा "टॉरिन"

हाल ही में चिकित्सकों के एक दल ने अपने अनुसंधान के जरिये दिल के दौरों पर काबू पाने का एक नया तरीका खोज निकाला है। इससे यह सिद्ध हुआ है कि दिल के रोगियों को इस बीमारी से असमय मरने की संख्या न केवल कम होगी, बल्कि कुछ परिस्थितियों में इसे टालना अब कहीं अधिक आसान होगा। इसके लिए चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों ने हृदय को ही मजबूती प्रदान करने का प्रयास शुरु कर दिया है, जिसकी दुर्बलता और संरचनात्मकता के स्तर पर टूट फूट के कारण दिल को "अटैक" का सामना करना पड़ता है और कई बार रोगी अनेक चिकित्सकीय सुविधाओं के बावजूद जान से हाथ धो बैठता है। फलतः वैज्ञानिकों की दृष्टि में जिन कारणों से दिल को दौरों का सामना करना पड़ता है, उन समस्त कारणों को देखते हुए टॉरिन की मदद से दिल को ही मजबूती प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है।

यह सभी जानते हैं कि दिल खून को पंप (साफ) करे, इसके लिए दिल की पेशियों का फैलना और सिकुड़ना आवश्यक है, इस कार्य में ऊर्जा की खपत होती है, जिसके लिए शरीर को "कैल्शियम" की आवश्यकता होती है किन्तु यह तत्व यदि आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपस्थित हो तो निश्चित रूप से हृदय पेशियों को हानि होगी। इस स्थिति की पड़ताल करते हुए वैज्ञानिकों ने पाया कि कैल्शियम की मात्रा शरीर में बढ़ती है तो कोशिकाएं पूरे तौर पर ढह नहीं जातीं, वरन कैल्शियम के हानिकारक प्रभाव से बचाव का भरसक प्रयास करती हैं। इस कार्य में "टॉरिन" पेशियों की भरपूर सहायता करता है। यह सोडियम आयन के कोशिका झिल्ली के पार जाते हुए टॉरिन को साथ ले जाता है। सोडियम का आयन ही कैल्शियम और हाइड्रोजन के आयनों का नियमन करके हृदय कोशिकाओं की कारगुजारी को सामान्य बनाये रखने में मददगार होता है।

उल्लेखनीय है कि हृदय की कोशिकाओं में टॉरिन की मात्रा 4 से 50 मिलिमोलर अर्थात 10 लाख भाग में से 4 से 50 भाग तक पायी जाती है, जबकि मनुष्य की हृदय कोशिकाओं में 20 मिलीमोलर से ज्यादा होती है। रक्त के सीरम में इसकी मात्रा हजारों गुणा कम होती है। टॉरिन हृदय कोशिकाओं को किस प्रकार प्रभावित करता है, यह जानने के लिए हृदय कोशिकाओं को एक एक करके न केवल अलग किया गया बल्कि एक अकेली सक्रिय कोशिका को जांचा परखा गया। अपने अनुसंधान से पावेल ने यह साबित किया कि दिल के दौरे के पीछे कुछ खास कारण होते हैं। दाहरण के तौर पर दिल को अचानक खून की आपूर्ति बाधित होना, ऑक्सीजन का नहीं मिलना, अरक्तता की स्थिति आना। तब दिल की कोशिकाओं में टूट फूट आती है। इन हृदय कोशिकाओं को विभाजित करते हुए वैज्ञानिकों ने देखा कि यदि तरल माध्यमों में थोड़ी सी टॉरिन की मात्रा मिला दी जाये तो यही कमजोर सी दिखने वाली कोशिकाएं काफी मजबूत दिखने लगती हैं। फिर वह ऑक्सीजन की कमी तक को न केवल सहन करती हैं बल्कि टूटकर अलग भी नहीं होतीं।

अब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि हृदय की कोशिकाओं का क्षरण कैसे होता है ? ये संरचनात्मक स्तर पर टूटती-फूटती क्यों हैं ? इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि हमारा हृदय सदैव एक पंप के समान कार्य करता है। चाहे आप सो रहे होते हैं या जागते रहते हैं। प्रत्येक अवस्था में उसे कार्य करना पड़ता है। दिल के पंप करने अर्थात धड़कने की क्रिया में पेशी कोशिकाएं सक्रिय होती हैं। उन्हें कभी आराम करने का मौका ही नहीं मिलता, जब तक मनुष्य जीवित रहता है। कहने का अर्थ

यह कि धड़कन के साथ पेशी कोशिकाओं को भी सिकुड़ने और फैलने का सिलसिला जारी रखना पड़ता है। वास्तव में यही धड़कन को काबू में किये रहती हैं। जो कुछ विद्युतीय और यांत्रिक परिवर्तनों से जुड़ी होती हैं। एक से दूसरी धड़कन के बीच कुछ अप्रत्याशित बदलाव या गड़बड़ी पैदा होती है तो पेशी कोशिका के स्तर पर सुधार करना आवश्यक होता है। ये परिवर्तन अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं।

चूंकि आपके दिल का धड़कना सोडियम-पोटेशियम पंप समान कार्य करता है यानी कि प्रत्येक कोशिका की झिल्ली से सोडियम पोटेशियम की अतिरिक्त मात्रा बाहर निकलती रहती है। इस चयापचय क्रिया से ही हृदय को ऊर्जा की प्राप्ति होती है और कोशिका दर कोशिका यह आयन विनिमय ही हृदय को गतिशील बनाये रखता है। यह क्रिया पूरे हृदय को पंप के समान चलाती है, इसमें जितनी ऊर्जा व्यय होती है, उससे हाइड्रोजन के आयन पैदा होते हैं, जिन्हें बाहर निकालना होता है, इस क्रिया के दौरान ही सोडियम आयन बाहर निकलता है और पोटेशियम आयन अन्दर जाता है।

यों कि जब हृदय में यांत्रिक या विद्युतीय गड़बड़ियां परिलक्षित होती हैं तो इसका मतलब यही होता है कि किसी न किसी कारणवश अब हृदय की पेशी कोशिकाओं में कैल्शियम और हाइड्रोजन का नियमन अवश्य बाधित हो रहा है, ऐसे प्रमुख तीन विकारों को वैज्ञानिकों ने रेखांकित किया है। ये हैं रक्त की कमी, कैल्शियम की कमी या अधिकता या चयापचयी अवरोध का उपस्थित होना।

यदि हृदय पेशी कोशिका विकारग्रस्त होते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि हृदय को सुचारु रूप से कार्य करने देने के लिए आवश्यक तत्वों की कमी हो गयी है और बाधा पहुंचाने वाले तत्वों की मात्रा काफी बढ़ गयी है। ऐसी अवस्था में तरल में व्याप्त सोडियम, कैल्शियम और हाइड्रोजन आयनों को समेटने वाला कोई यौगिक उपयोग किया जाये। जब पेशी कोशिकाएं अपनी विद्युतीय क्रिया बनाये रख सकती हैं और शेष बाधाओं को पार घाट लगा सकती हैं। तब कोशिका के मरने का प्रश्न बाकी नहीं रहता।

यह शुभ कार्य केवल टॉरिन ही करता है। अगर पेशी कोशिकाओं में टॉरिन की मात्रा प्रविष्ट करा दी जाये तो कोशिकाओं में सोडियम की मौजूदगी को कम किया जा सकता है। मात्र इतना ही नहीं बल्कि कोशिकाओं में टॉरिन की अधिक मात्रा की उपस्थिति से सोडियम की अधिकता को सहन करने की क्षमता भी बढ़ जाती है। किन्तु अभी एक और रहस्य पर से पर्दा उठना बाकी है कि क्या टॉरिन की मात्रा बढ़ाने से हृदय की कोशिकाओं के आपरेशन के समय या उसके बाद अरक्तता की स्थिति में हृदय के सहन करने की क्षमता बढ़ेगी या नहीं।

किन्तु अब इतना तो तय है कि हृदय रोगियों की कोशिकाओं में बढ़े हुए यौगिकों की मात्रा का सही तौर पर पता चल जाता है तो टॉरिन की सहायता से दिल के दौरों को बहुत हद तक काबू में किया जा सकता है और उसे लम्बे अर्से तक धड़कते रहने के लिए क्षमतावान भी बनाया जा सकता है। एस तथ्य में शक की गुंजाइश बाकी नहीं बचती।

यह भी उल्लेखनीय है कि "टॉरिन" एक ऐसा आमिनो एसिड है, जो जीवन के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये शरीर के लिए कई प्रकार के कार्य करते हैं और ये ही यौगिक हड्डी के ऊत्तक, प्रोटीन अणु, त्वचा, ऊतक, मांसपेशी, रुधिर कोशिकाएं, इंसुलिन, एंजाइम, हजारों प्रकार के हार्मोन और अनेकानेक जैविक पदार्थों का निर्माण करते हैं। ये प्रोटीन निर्माण के अलावा स्वतंत्र रूप से शरीर में विद्यमान रहते हुए तंत्रिकाओं से संवेगों के रूप में संदेश लाने ले जाने का कार्य भी करते हैं, जिससे मनुष्य का व्यक्तित्व भरपूर लगता है। टॉरिन विभिन्न देह कोशिकाओं में काफी मात्रा में मौजूद रहता है। जो अब तक की जानकारी के अनुसार कोलेस्टेरोल को तोड़ने का कार्य करता था, जो एक वसीय पदार्थ माना जाता है। यह हृदय कोशिकाओं और धमनियों में एकत्र होकर अवरोध खड़ा करता है, जिससे दिल का दौरा पड़ सकता है। यही टॉरिन नामक अमिनो

एसिड अब एक ऐसे यौगिक के रूप में हमारे सामने है जो हृदय पेशी कोशिकाओं को न केवल मरने से बचायेगा बल्कि पेशियों को बीमारी से लड़ने के मामले में मजबूती भी प्रदान करेगा।

3. अब टीका दिलायेगा मलेरिया से छुटकारा

हमारे देश में मलेरिया रोग का आगमन भारतीय सभ्यता संस्कृति से कुछ कम पुराना नहीं है। अनेक राज्य इस जानलेवा रोग की चपेट में आते रहे हैं और आज भी पूरे तौर पर मलेरिया से मुक्त नहीं हैं। प्रत्येक वर्ष 7-8 करोड़ लोग औसतन मलेरिया का शिकार बनते हैं। इन में लाखों की इस रोग से अकाल मृत्यु होती है। ज्ञातव्य है कि सन 1953 से पहले देश में प्रति वर्ष 8 से 10 करोड़ लोग मलेरिया के चपेट में आते थे, जिस संख्या में कमी अवश्य आयी है किन्तु इस रोग का 'राष्ट्रीय मलेरिया रोकथाम कार्यक्रम' के बाद चलाये गये मलेरिया : राष्ट्रीय उन्मूलन कार्यक्रम योजना के तहत पूरे तौर पर समूल नष्ट किया जा चुका है, यह आंशिक रुप से ही सत्य माना जा सकता है।

आंकड़ों में भले ही इसके रोगियों की संख्या लाखों में आ गयी है और देश के अनेक राज्यों में रोग का उन्मूलन हो चुका है मगर गौर तलब है कि इन्हीं राज्यों में यह रोग बार बार सिर उठाता नजर आता है और अखबारी सुर्खियों में छाता रहा है। अब तक मलेरिया उर्फ बुरी हवा से उत्तरी भारत के राज्यों के अलावा गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, असम, कर्नाटक, मध्य प्रदेश सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र रहे हैं।

इस रोग से पूरे तौर पर छुटकारा नहीं मिल पाने के मुख्य कारणों में एक तो यह गिनाया जाता है कि मलेरियारोधी औषधियों का बार-बार उपयोग करने से रोगी के शरीर में प्रतिरोधक क्षमता में कमी दृष्टिगोचर होने लगती है, जिससे रोगी पर दवा का कारगर असर नहीं होता। दूसरी अहम बात यह कि इससे बचाव का सर्वोत्तम उपाय वैक्सीन का प्रयोग माना जाता है किन्तु दुखद तथ्य यह है कि अभी तक देश में किसी वैक्सीन का आविष्कार करने में वैज्ञानिक असफल साबित हुए हैं।

अब तक मलेरिया रोग से मुक्ति के लिए जिन दवाओं का उपयोग होता है, उनके निर्माण में अमेरिकी चिकित्सकों और शोधकर्ताओं का अभूतपूर्व योगदान रहा है, जिन दवाओं के शोध में "वाल्टर रीड आर्मी रिसर्च इंस्टीट्यूट" ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। जिनमें "क्लोरोक्वीन" नामक दवा सबसे अधिक कारगर मानी जाती है।

इस जानलेवा बीमारी के खिलाफ एक बार फिर दक्षिण अमेरिका (कोलंबिया) के जैव रसायनशास्त्री (बायोकेमिस्ट) ने अपनी शोध टीम के साथ 1979 में "एस पी एफ 66" नामक टीका विकसित किया था। इससे पहले वैज्ञानिकों ने जितनी औषधियों का निर्माण किया था, वे अपना प्रभाव खो चुकी थीं। नतीजतन, भारत, मध्य एशियाई देश, यूरोप हो अथवा अफ्रीकी देश तमाम देशों में मलेरिया के परजीवी को ले जाने वाला मादा एनोफलीस मच्छर कीटनाशकों से कहीं अधिक शक्तिशाली रुप ग्रहण कर चुका था। इसी का यह परिणाम है कि आज थाईलैंड में "क्लोरोकुनीन" से मलेरिया परजीवियों पर नियंत्रण प्राप्त करना असंभव सिद्ध हो रहा है। इसी प्रकार 10 वर्ष पूर्व कम्बोडिया में एक नई औषधी "मैफ्लोकुनीन" का उपयोग शुरु हुआ, लेकिन आज यह स्थिति है कि यह दवा 80 प्रतिशत मलेरिया परजीवियों को काबू में करने में असफल सिद्ध हो चुकी है।

इस रोग का कोई कारगर वैक्सीन या टीका बनाने का निरंतर प्रयास बरसों से विश्वव्यापी स्तर पर चल रहा है, इसी का यह सुखद नतीजा कहा जायेगा कि इस असंभव कार्य को दो वैज्ञानिकों मानुएल पोटारियो और फोल्कमार ब्राउन ने इस बीमारी के कुप्रभावों को कम करने की दिशा में सफलतापूर्वक टीके को ईजाद करने में सफलता पायी है। यह सफलता मनुष्य के बहुत पुराने शत्रु "प्लासमोडियम फल्सीपेरम" पर पाये गये काबू का द्योतक है। इस परजीवी पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समय यूरोप में कीटनाशक दवा डीडीटी और क्लोरोकुनीन की सहायता से नियंत्रण पाया गया था। आजकल इसे

"विषुवतीय बीमारी माना जाता है। जो विगत 25 सालों में एक बार फिर घातक बीमारी के रूप में प्रकट हुआ है। उल्लेखनीय है कि विश्व की करीब आधी अबादी मलेरिया परजीवी के हमलों के दायरे में निवास करती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 30 करोड़ से 50 करोड़ तक मनुष्य इसके प्रभाव से पीड़ित हैं। मलेरिया के सर्वाधिक चर्चित रोग "मलेरिया ट्रापिका" से प्रत्येक वर्ष करीब 15-30 लाख मनुष्य जीवन से असमय हाथ धोते हैं। अब इस दुखद अध्याय का अन्त निकट लगता है।

वैज्ञानिक यह जानते हैं कि किस प्रकार मलेरिया परजीवी मनुष्य के प्रतिरक्षा तंत्र को चकमा देते हैं। पहले मादा एनोफलीस मच्छर अपने भोजन की तलाश में मनुष्य के शरीर में अपने दंश चुभोती है और अपने थूक के माध्यम से मनुष्य के प्रतिकारक इनका सामना करें, तब तक ये यकृत में "स्पोरो जोइजस" के रूप में छुप जाते हैं। यही परजीवी मनुष्य के रक्तप्रवाह में "मेरो जोइट" के रूप में उतरता है फिर जब लाल कणों में यह अपनी संख्या बढ़ाता है, तब प्रतिरोधक कारक भी इसका मुकाबला नहीं कर पाते। बढ़ोतरी की यह प्रक्रिया लाल रक्त कणों के फटने तक जारी रहती है। इसके उपरान्त ज्वर के साथ पैरक्सिस्म का दौरा आना आरंभ होता है।

लंबे अर्से से मलेरिया के टीके पर शोधरत पेटारियों एवं उनके साथियों ने शास्त्रीय प्रतिरक्षण शोध प्रक्रिया के कारगर टीके के निर्माण का प्रयास जारी रखा। अन्ततः इसका नतीजा टीकों के मिश्रण के रूप में सामने आया। उल्लेखनीय है कि एस. पी. एफ. 66 टीका मलेरिया परजीवियों को कुछ इस प्रकार उत्तेजित करता है कि एक बार वह चमत्कारी तरीके से हमेशा की तरह प्रतिरक्षा तंत्र को हमले के मामले में गड़बड़ा देता है, फलतः इस कारण प्रतिरक्षा तंत्र अपने विरुद्ध होने वाले हमले के प्रति सतर्क हो जाता है। गौरतलब है कि कोलंबिया में किये गये परीक्षणों के दौरान पाया गया कि यह टीका वयस्कों पर 40 प्रतिशत और बच्चों पर 77 प्रतिशत सफल सिद्ध हुआ, दूसरी ओर तनजानिया में 1994 में हुए शोध के नतीजों से ज्ञात होता है कि यह टीका एक से पांच साल तक के बच्चों पर बिना किसी दुष्परिणाम के तीन टीकों तक को सहन कर सकते हैं। तब परिणाम का औसत 31 प्रतिशत तक होता है।

यद्यपि यह भी स्वीकार किया गया है कि यह नया टीका भी मच्छर के काटने से फैलने वाले छूत से बचाने में सफल नहीं है किन्तु यह असहनीय दर्द और ज्वर के प्रभाव को बहुत हद तक कम करता है। बहरहाल, एस. पी. एफ. 66 को मलेरिया का सबसे उन्नत इलाज माना जा रहा है। इस औषधि का पेटेंट अधिकार विश्व स्वास्थ्य संगठन के पास सुरक्षित है। जिसे पेटारियो ने विश्व स्वास्थ्य संगठन को दान के रूप में प्रदान किया है और इसके अधिकार के एवज में एक अमेरिकी फर्म के करोड़ों डालर के प्रस्ताव को तुकराया है। कारण कि चिकित्सक एवं जैव रसायन शास्त्री पेटारियो यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि इसका उत्पादन कोलंबिया में हो और यह टीका एशिया, दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका के जरूरतमंदों को समय पर उपलब्ध हो सके। इस टीके की कीमत भारतीय रुपयों में 15-20 रुपये से अधिक नहीं होगी। इस टीके पर व्यापक शोध के लिए कोलंबिया सरकार के अलावा जर्मन कोढ़ राहत संगठन ने धन दिया था।

पेटारियो आगामी अक्टूबर में विश्व के सबसे प्रतिष्ठित "रोबर्ट कोख विज्ञान पुरस्कार" से सम्मानित होंगे। रोबर्ट कोख ने तपेदिक के दंडाणुओं की खोज की थी। उन्हें आज भी आधुनिक जीवाणु विज्ञान (बैक्टिरियोलॉजी) का पिता माना जाता है। यह पुरस्कार सन 1965 से संक्रामक बीमारियों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध कार्य करने वाले चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों को प्रदान किया जा रहा है।

प्रस्तुति : तारिक असलम खान

लेखनी प्रकाशन, 2/6, हारून नगर कालोनी, फुलवारी शरीफ, पटना - 801 505

4. पशु जगत संबंधी कुछ रोचक जानकारियां

✱ अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति निधि संरक्षण संघ ने भारत में चल रहे गैरकानूनी सर्प चर्म व्यापार पर गहरी चिन्ता व्यक्त की है। 1972 से वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के बावजूद इस व्यापार में लिप्त प्रकृति विनाश के दानव विश्व स्तर पर चोरी छुपे सांपों की खालें निर्यात कर रहे हैं। नाग, करैत, वाइपर, धामन व अजगर जैसे सर्पों के शरीर का बाह्य आवरण अत्यन्त सुन्दर व आकर्षक है। सांपों की चमड़ी से आकर्षक पर्स, बेल्ट व फैशन की अत्याधुनिक चीजें तैयार की जाती हैं जिनकी विश्व बाजारों में काफी कीमत है। इस व्यापार ने गत तीन दशकों में भारत में करोड़ों की संख्या में सापों की कमी कर दी है। सन् 1976-77 में मात्र इंग्लैंड ने भारत से 969945 सर्प चर्म प्राप्त किये थे। सर्प प्रकृति, पारिस्थितिकी की अमूल्य सम्पदा हैं तथा प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानव के धरती पर जन्म से करोड़ों वर्ष पूर्व से अपना अस्तित्व कायम रखे सर्प हमारी विरासत हैं तथा राष्ट्रीय संपदा भी। सर्प भोज्य श्रृंखला के रूप में प्राकृतिक सन्तुलन किये हुए हैं। सर्पों को नष्ट कर हम भारी प्राकृतिक विपदा में पड़ सकते हैं।

✱ सितम्बर 93 में महाराष्ट्र में लातुर में आये भयानक भूकम्प में राहत कार्यों के दौरान कुत्तों ने आठ फुट गहरे मलबे में चार दिनों से दबी एक मासूम जिन्दगी को बचाने में मदद की। बचाव अभियान में लाशों के अम्बार में सूंघते-सूंघते इन कुत्तों को एक जगह मचलती जिंदगी की भनक मिली। मलबा साफ करने के उपरान्त नीचे डेढ़ वर्ष की एक मासूम बच्ची नीम बेहोशी की हालत में मिली जिसका अस्पताल में ले जाकर इलाज कराया गया। कई दिनों बाद बच्ची को होश आया।

✱ दक्षिणी श्रीलंका में हांडा पानागाला उन नौ गन्ना उत्पादक गांवों में से एक है जहां के निवासी हाथियों के भय से रात पेड़ पर गुजारते हैं। यह गांव याला (जहा देश का सबसे बड़ा हाथियों का अभयारण्य है) राष्ट्रीय उद्यान के निकट है। इस क्षेत्र में गन्ने का उत्पादन करके अधिक मुनाफा कमाने की लालच से किसानों ने उन जंगलों तक अपने खेतों का विस्तार कर लिया है जहां कभी हाथी रहते थे। इसी कारण न केवल हाथियों के विचरण के लिए जगह कम रह गयी है बल्कि वनों को काटकर खेती करने के कारण हाथियों का भोजन भी कम हो गया है। पिछले दो वर्षों में हाथी कम से कम आठ लोगों को मौत के घाट उतार चुके हैं।

✱ भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा विशेष रूप से गठित एक कार्य दल की रिपोर्ट के अनुसार देश में गाय और भैंस के दूध में डी. डी. टी. पाउडर और अन्य कीटनाशकों के अवशेषों की काफी मात्रा पायी गयी है।

डॉ. अनिल कुमार शर्मा
पशुचिकित्साधिकारी,
द्वाराहाट, अल्मौड़ा - 263653 (उ. प्र.)

पृष्ठ - 34 का शेषांश . . .

जिन्हें सिसाइल बैक्टीरिया कहते हैं इनकी मारक परिधि से बाहर रहते हैं। अतः इन सिसाइल बैक्टीरिया को नियंत्रित करने या नष्ट करने के लिए पराबैंगनी विधि के साथ साथ बायोसाइड का उपयोग आघात उपचार विधि के द्वारा कभी - कभी करना पड़ता है। इस मिश्रित तकनीक में बायोसाइड की कम मात्रा का उपयोग होता है। हालांकि शुरु के वर्षों में बैक्टीरिया द्वारा प्रेरित संक्षारण को अधिक महत्व नहीं दिया गया था लेकिन आधुनिक शोध कार्य तथा खोज द्वारा यह सिध्द किया गया है कि बैक्टीरिया तेल क्षेत्रों में पाइप लाइनों, तेल टैंकरों तथा अन्य संयन्त्रों के संक्षारण के लिए उत्तरदायी है। इनकी उपस्थिति की तुरन्त जाँच के लिए रैपिड डिटेक्शन किट विकसित किये गये हैं जिसके द्वारा 20 मिनट में इनकी उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। बैक्टीरिया को नष्ट करने के लिए नई विधियों का उपयोग किया जा रहा है। ऐसी मिश्रधातुओं के उपयोग के प्रयत्न किये जा रहे हैं जिन पर बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न किये गये संक्षारक पदार्थों का असर न हो।

❐❐❐

कहानी विकिरण की

मुझको कहते हैं विकिरण, ओत प्रोत है मुझसे,
जीवन का हर कण ।
मैं सूरज से समुंदर तक जाती हूँ,
प्रयोगशाला में, तुम्हारे इशारों पर,
यंत्रों की चाबुक से, मुझे नचाया जाता है,
किन्तु मेरे पास न कोई आता है,
हर समझदार मेरे सामीप्य से कतराता है ।
किन्तु फिर भी मैं सबके पास जाती हूँ,
चाहे कृत्रिम हो या प्राकृतिक,
हर जगह पायी जाती हूँ ।
हर पल तुम्हारे काम आने वाली,
मैं, कभी गामा, कभी रेडान,
कभी क्ष-किरण कहलाती हूँ ।
जब कोई तुम्हारा प्रियजन,
कर्क* राक्षस के पंजों में दबोच लिया जाता है,
तो मेरी पवित्र किरण उसे मुक्त कराती है,
कर्क राक्षस से बचाती है ।
जीवन की रहा दिखाती है ।
जब कोयला, पानी, तेल, सब हो जाते फेल,
तब देखिये परमाणु ऊर्जा का खेल ।
परमाणु मेरा बड़ा भ्राता है,
बड़ी मुश्किल से हाथ आता है ।
पर उसका त्याग तो देखिये-
अपने नाभिक के विखंडन से, बड़े-बड़े बिजली घर
चलाता है, देश को प्रगति की ओर बढ़ाता है ।
कल्पाकम, तारापुर, कोटा का,
यही भाग्य विधाता है ।
किन्तु हम भाई बहनों का, गुस्सा बड़ा खराब है,
मत भूलो कि हिरोशिमा,
नागासाकी इसका जवाब है ।
ईश्वर का मानव को शाप है,
कि 'जो करेगा हमारी अवहेलना',
उसे 'चेर्नोबिल, थ्री माइल आइलैण्ड'
का दुःख है झेलना ।
जो अनावश्यक मेरे पास आयेगा,
कर्क राक्षस उसे उठा ले जायेगा स्वयं में ही नहीं,
पीढ़ियों में भी मेरा प्रभाव पायेगा ।
दोस्तों, प्यारे दोस्तों, इक नेक सलाह है मेरी तुमको,
कि अगर बचना चाहो तुम, राक्षस विकिरण से,
तो कदम न रखना बाहर, सीसे की लक्ष्मण रेखा से,
मॉनीटर बैज लगाकर आओ,
लम्बी उम्र सभी तुम पाओ ।
यही है मेरी राम कहानी
मैंने सुनायी अपनी जबानी ।

* कैंसर

शिवाकान्त वाजपेयी
रेडियोग्राफर, शासकीय चिकित्सालय महू,
जिला-इंदौर (म.प्र.)

हर शिव पीता गरल

रवि चन्द्रमा हमारे हैं
पवित्र आत्माओं की धरती पर
विकिरण ने कई काज संवारे हैं
वायु में विकिरण की महक है
जल में विकिरण की प्रभा
अग्नि में विकिरण की प्रेरणा
शरीर में विकिरण ज्यों आत्मा
मुक्ति का मार्ग नहीं सरल
यहां हर शिव पीता गरल
विज्ञान अपने चरम पर है
आंगन में इसे उतरने दो
खोल दो मन के संकुचित झरोखे
समय को निर्बाध बहने दो

विकिरण की निर्मूल आशंकाओं को
बाहर निकल जाने दो
पूजा अर्चना करो इसकी
जीवन को उन्नत हो जाने दो ।

स्वार्थ से ऊपर उठ जाने दो
सावधानी से हो इसका प्रयोग ।

मेघ सचदेव
न्यूक्लियर पावर कार्पोरेशन, बम्बई 400 085

कुछ फूल : कुछ कांटे

मुझे वैज्ञानिक का अक्तूबर-दिसम्बर 1994 (26: 4) अंक प्राप्त हुआ और इसके लिए मैं आभारी हूं।

पत्रिका में छपे हुए सभी लेख सरल और सुन्दर ढंग से लिखे गये हैं और बहुत ही उपयोगी हैं। 26 सालों से लगातार एक पत्रिका (और खासतौर पर हिन्दी में विज्ञान के बारे लिखना) का प्रकाशन बहुत ही कठिन काम है। संपादन मंडल के सभी सदस्य प्रशंसा के पात्र हैं।

24-07-95

डॉ. वी. रामशेष
सदस्य सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति,
अनुप्रयुक्त रासायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केन्द्र, बंबई - 400 085

❐❐

"वैज्ञानिक" का अक्तूबर-दिसम्बर 1994 का अंक मिला। आपको "विज्ञान एवं विज्ञान समितियाँ" शीर्षक संपादकीय के लिए विशेष बधाई। जिन तथ्यों को संपादकीय लेख में उठाया गया है वही वस्तुस्थिति है। अनेक समितियों का गठन किसी भी कार्यक्रम के बनाने एवं प्रतिपादन के लिए आवश्यक हो सकता है, किन्तु कुछ एक लोगों का अधिकांश समितियों में होना हमारी सबसे बड़ी कमजोरी बन गयी है।

सदा की तरह "वैज्ञानिक" के इस अंक में संग्रहित लेख उच्च कोटि एवं सर्वग्राह्य हैं।

शुभकामनाओं सहित,

8-09-95

राजेन्द्र सिंह
उप निदेशक, परमाणु ऊर्जा विभाग,
परमाणु खनिज प्रभाग परिसर,
बेगमपेट, हैदराबाद 500 016.

❐❐

"वैज्ञानिक" का अक्तूबर - दिसम्बर (26 : 4) अंक प्राप्त हुआ। पृष्ठ 43 पर छपी टिप्पणी 'जीवाणु खाद-कितनी उपयोगी ?' के बारे में निम्नलिखित त्रुटियां सुधार योग्य हैं, (1) जीवाणु खादों द्वारा दलहनी फसलों की आवश्यकता 20-40% पूरी की जा सकती है, न कि 90% ! (2) वायुमंडल में नाइट्रोजन का प्रतिशत 78% है न कि 80%, जैसा कि लेख में निश्चित मात्रा के रूप में कहा गया है। 78-80% कहना अधिक उपयुक्त रहता है। (3) 'प्रजातियों' के अंतर्गत 'उप-जातियां' आती हैं, न कि जातियां। (4) राइजोवियम द्वारा अधिकतर 20-60 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हैक्टर स्थिर हो सकती है, न कि 50-200 किग्रा.

6-10-95

डॉ. सूर्यदेव मिश्र
आण्विक जीवविज्ञान एवं कृषि प्रभाग,
भा. प. अ. केन्द्र, बंबई 400 085

❐❐

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉंबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियो आइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रूप से विकास किया है एवं देश - विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं सेवाएं इस प्रकार हैं :

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचों तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई. सैट, वी. कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रूई, शल्य ब्लेड, दस्तानें, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)

वि. ना. पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.

टेलीफोन : 555 1676/555 3145

तार : ब्रिट एटम, बम्बई - 94, टेलेक्स : 011 72212 ब्रिट इन

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

शेरबानू, छटी मंजिल, 111, महर्षि कर्वे रोड,
बंबई - 400 020 (भारत)

फोन : 290 914 - 15 टेलेक्स : 011 - 83122

तार : रेअर अर्थ बंबई

: हमारे उत्पादन :

इलमेनाइट
स्टाइल
जरकान
जरकॉन फ्लोर (जिरफ्लोर)
जिरकोनियम ऑक्साइड
जिरकोनियम आक्सीक्लोराइड
गारनेट
सिलिमेनाइट
मोनाजाइट

रेअर अर्थ्स क्लोराइड
रेअर अर्थ्स फ्लोराइड
रेअर अर्थ्स ऑक्साइड एवं साल्टस
सीरियम ऑक्साइड
सीरियम हाइड्रेट
सीरियम कार्बोनेट
ट्राइसोडियम फास्फेट (डोडेकाहाइड्रेड)
समेरियम/इट्रियम/गैडोलिनियम सांद्र

थोरियम/सीरियम नाइट्रेट - थोरियम ऑक्साइड
एवं
कृत्रिम स्टाइल

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा
डॉ. अशोक कुमार सूरी द्वारा प्रिंट शॉप, चेम्बूर, बम्बई (फोन : 555 2348) में मुद्रित व प्रकाशित ।

NUCLEAR GRADE MATERIALS FOR COMMERCIAL APPLICATION

The accuracy, quality and reliability of nuclear grade pipes and tubes - in seamless tubes of different grades S. S. and alloy steels as per ASTMA 312/213/269, for chemical, nuclear, fertilizer petrochemical and power generation industries.

Ultra pure materials - Like Selenium, Antimony, Bismuth, Gallium, Zirconium, $POCl_3$ and other electronic grade materials upto 99.999 purity.

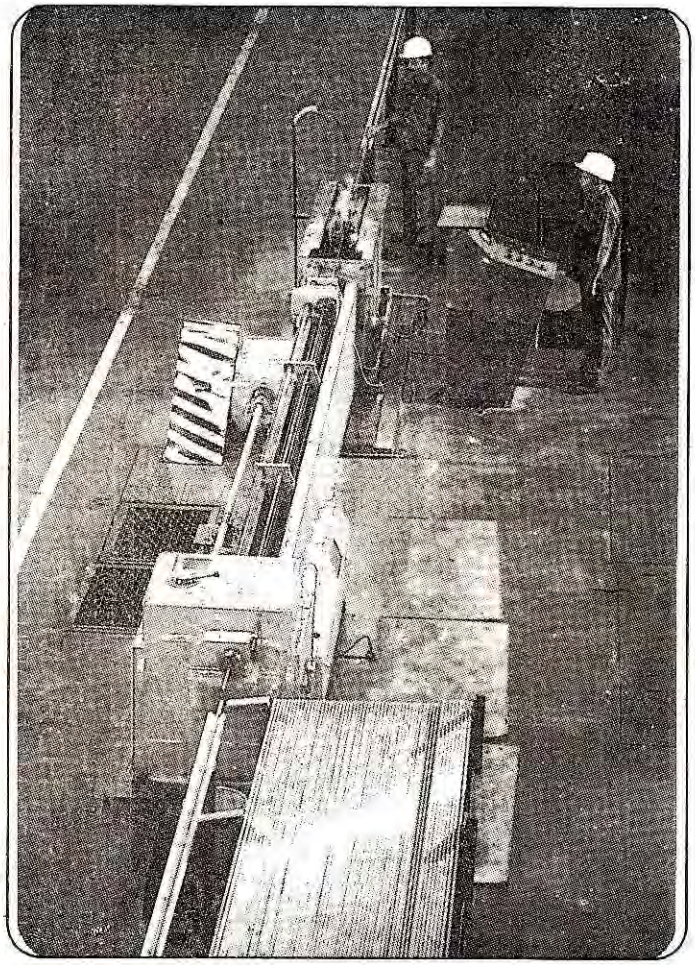

Job Work - For ho extrusion, cold pilgerin and vacuum or hydroge annealing of bearing o carbon steel, cupronickel titanium or other tubes plasma, Arc melting o special metals.

The 8-15 cold rolling or pilger mill, built at Nuclear Fuel Complex, available for sale to Indian Industries.

For your special material requirements, please contact :

Marketing Manager

NUCLEAR FUEL COMPLEX

ECIL POST, HYDERABAD - 500 762
Tel. No. 040 - 621239. Fax No. 040 - 621305